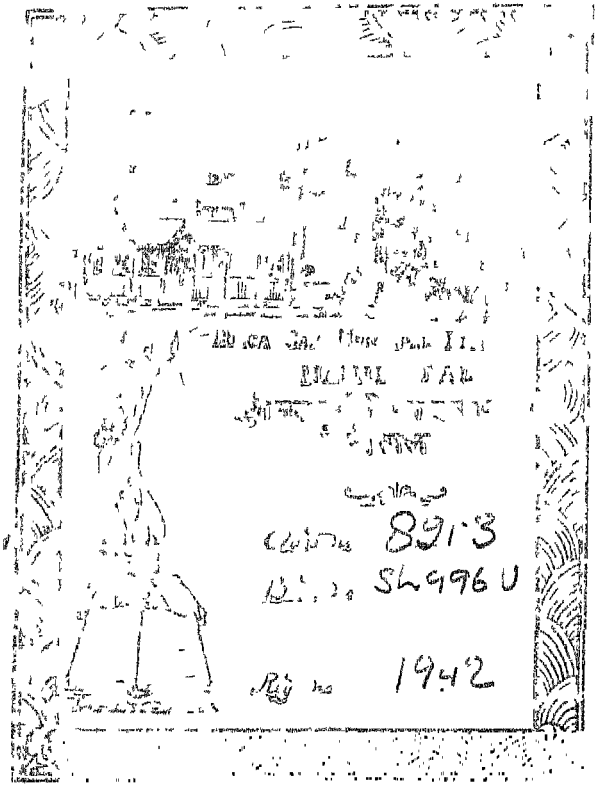

891.3
SL996U
1942

उरोजी

लेखक—
डा० श्यामसुन्दर लाल दीक्षित

दीप शिखा कार्य्यालय, हाथरस

प्रकाशक—
भारतीय पुस्तक भण्डार,
हाथरस

मूल्य एक रुपया

मुद्रक—
जयकिशोर शर्मा,
परिवर्त्तन प्रेस, हाथरस

प्रिय दर्शिनी
श्रीमती कमलावती दीक्षित
को,

—श्याम दीक्षित ।

निवेदन

—और साहित्य के मानी हैं जीवन की आलोचना, सत्य किन्तु अप्रिय नहीं। सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्। उत्कृष्ट साहित्य की सबसे बड़ी कसौटी है शुद्ध भावनाओं की जागृति और मनोरञ्जन। जिस कहानी का आधार कोई मनो-वैज्ञानिक-तथ्य हो, जीवन में घटित होने वाला सत्य हो, वह कहानी मानसिक-तृप्ति का कारण बनकर उत्कृष्ट साहित्य में परिणत हो जाती है। हल्के मनोरञ्जन की जो एक धारा-सी चल पड़ी है वह स्थायी-साहित्य नहीं है। देश, काल और स्थिति के अनुसार कहानी ने अपना आवरण भले ही बदल लिया हो परन्तु उसकी अन्तरात्मा आज भी वैसी ही है। वह कल्याणी है। प्राचीन और नवीन का अंतर आज काफी रूप में है फिर भी आज की कहानी में अनुभूति की तीव्रता होना ही उसकी महत्ता-सत्ता का कारण है। मौलिकता, सजी-वता, सौन्दर्य और अनुभूति से, आज कहानी का शृङ्गार पूर्ण रूपेण हो रहा है आज की कहानी, कला का नमूना है—जिसकी सृष्टि कलाकार ही कर सकता है।

मेरा विश्वास है, मेरी कहानियाँ कसौटी पर खरी उतरेंगी, उनसे आपका मनोरंजन भी होगा और राजनीतिक-साहित्य की अभिवृद्धि भी—यह गर्वोक्ति नहीं है, आत्म-विश्वास है। कहानियाँ आपको भेंट हैं, यदि सुन्दर जान पड़ें तो आज की विकासोन्मुख-कला को श्रेय है और अ-सुन्दर होने की जिम्मेदारी मेरे कलाकार की है।

सेवा कुँज
बाग मुजफ्फर खाँ, आगरा — —श्यामसुन्दरलाल दीक्षित

"दो बातें"

हिन्दी साहित्य ने और उसके संसर्ग में आने वाले लोगों ने, इन कहानियों के लेखक को राष्ट्रीय कवि के रूप में ही देखा सुना होगा और इस वर्ष से पहले मेरा भी ऐसा विचार था, परन्तु आज दीक्षित जी के बारे में अपनी धारणा बदलते हुये मुझे कष्ट नहीं बल्कि बड़ी प्रसन्नता मालूम होती है, वे एक उच्च कहानीकार भी हैं और कवि भी, जिनकी भावुकता और कल्पनाएँ सजीव-अजीव हैं। आप देखेंगे, उन्होंने अपनी इन छोटी-छोटी कहानियों में कई विषम समस्याएँ हमारे सामने रख दी हैं। उनका कवि-हृदय जहाँ अपनी कविता पुस्तक "भारती" में कराहते हुये कहता है:—

"वह छोड़ सकेगा नहीं गाय की बोटी,
यह खा न सकेगा मुसलमान की रोटी,
वह लम्बी दाढ़ी कर न सकेगा छोटी,
यह देख रहा है बट न जाय यह चोटी,
दोनों बैठे अपनी-अपनी ज़िद ठाने।
समझाया तुमको लाख न कुछ भी माने॥

वहाँ उनके व्यक्ति की "दो आँखें" गङ्गा-जमुना की धारा जैसी हिन्दू-मुसलिम-सरिता बहाती हुई दीख पड़ती हैं। कहानियाँ पेश करने का, उनका अपना ढङ्ग है—इससे इनकार नहीं किया जा सकता, वे सचमुच अपने प्रयत्न में आशातीत रूप से सफल हुये हैं। यह वास्तविकता है और

इस सचाई से आँख चुराना अपने आप को धोखा देना है।

"दो आँखें" यद्यपि मुग़लकालीन कल्पना से रंजित है; फिर भी क्या उन 'दो आँखों' में आज के युग की समस्या प्रतिबिम्बित नहीं हो रही है? मेरे विचार से उन की यह रचना कहानी-साहित्य में किसी से कम नहीं उतरेगी।

"भिक्षा" वाली कहानी पढ़ने के बाद हमें ज्ञात होता है कि हम किसी महान् आदर्शवादी प्राणी से बातें कर रहे हैं। राजनीति के प्रबल थपेड़ों से उसका चट्टान जैसा हृदय मानो चूर-चूर हो गया है। उस भग्न-हृदय से नारी की सृष्टि हुई है. वह सचमुच ही वन्दनीय है। अपने पति को खोकर पूर्णिमा 'पेन्शन' भी खो देती है, केवल इसीलिये कि वह भिक्षा नहीं लेगी, कैसा आदर्श त्याग है भारतीय नारी का?

"तआरुफ़" वाली कहानी पढ़ते-पढ़ते कई बार विचारों का संघर्ष हो पड़ता है। करुणा-रस से ओत-प्रोत इस रचना को पढ़कर किस सहृदय का मन नहीं रो उठता? फ़िरोज़ाबाद के डा० जीवाराम जो के जीवन को लेकर दीक्षित जी ने जो कुछ चित्रण किया है उसने उनकी लेखनी को अमर कर दिया है।

"प्रायश्चित" तो हमारे समाज के महत्वाकाँक्षी परंतु अनुभव शून्य युवकों पर एक ऐसा मीठा व्यंग है जो कसकता भी है और प्यारा भी लगता है।

"जीवनदान" नामक कहानी में गार्हस्थिक दृश्य और डाक्टर के जीवन की साधना असमय ही भंग होते देखकर सहसा मन कह उठता है:—"दैवो दुर्बल घातकः।"

कहानी-कला के दृष्टिकोण से यह कहानी कहीं से भी उतरी नहीं है ।

अँग्रेजी में 'बहनोई' को 'ब्रदर इन ला' कहते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद दीक्षित जी ने किया है "क़ानूनी भाई" और यह 'क़ानूनी भाई' समाज में खड़ी हुई अपने व्यक्तित्वरूपी बालू की दीवार को गिराते-बनाते और सम्हालते रहते हैं। इनको 'व्यापार' का खुला सार्टीफिकेट सदैव प्राप्त रहता है। इस प्रकार कविवर दीक्षित जी ने इस दिशा में जो हलका-सा प्रकाश डाला है वह विस्मरणीय नहीं है। यह घटनायें वे हैं जो हमें और हमारे समाज को एक दूसरी दिशा की ओर खींचे लिये जा रही हैं।

"कैसे ब्याह राधा" विशुद्ध राजनैतिक और साहित्यिक कहानी है, जो यह बताता है कि क्रान्ति और जागृति पढ़े-लिखों तक ही सीमित नहीं है, अपढ़-गँवार किसानों में भी उतने ही प्रचण्ड रूप से व्याप्त है। जितना राम का नाम व्यापक है उतना ही आज गाँधी जी का भी। पं० नेहरू की जय-जयकार, उनके त्याग, उनकी तपस्या ने सारे भारत को ही नहीं वरन् समस्त संसार के कोने-कोने को आलोकित कर रखा है। हमारे वन्दनीय नेताओं का महान् चरित्र; हमारे सामाजिक जीवन को सात्विकता प्रदान करने वाला रहा है, और रहेगा। हम जानते हैं कि दीक्षित जी पं० जवाहरलाल जी नेहरू के अनन्य भक्तों में से हैं, जिन्होंने जवाहर के जौहर पर अपने अक्षर-कंचन भी निछावर किये हैं और तन-मन भी; निरीह कवि. सरस्वती के उपासक के पास धन नाम की कोई वस्तु तो होती ही नहीं है। कवि ने उनको इष्टदेव की भाँति माना और जाना है और उनकी यही भावना इस कहानी

में पूरे रूप से ललक-झलक रही है।

अन्तिम कहानी है 'उरोजी'। मेरा खयाल है कि इस कहानी का निर्माण शायद इसीलिये किया गया है कि पाठक को कुछ 'रोमान्स' जैसी वस्तु भी इस संग्रह में मिल जावे, कहानी जिस स्थान से सम्बन्ध रखती है वह भी अनुपम है और कथा का आधार भी अद्वितीय है, भिन्नता, एक निष्ठता और आदर्श की जीती-जागती प्रतिमूर्ति ही समझिये।

पुस्तक के नाम के विषय में मेरा मतभेद है। इसका नाम कुछ और भी रखा जा सकता था परंतु आज जो आकर्षण की धारा चल पड़ी है; उससे प्रभावित होकर ही ऐसा किया गया जान पड़ता है।

जो भी हो, कुल मिलाकर सभी रचनाएँ सुन्दर और मँजी हुई तथा प्रभावशाली हैं। यों तो ललित-साहित्य में उनके द्वारा प्रदत्त बहुत-सी कहानियाँ हमारी नजरों से गुजरी हैं परन्तु उनका यह पहला प्रयास अथवा उनकी यह 'भेंट' मूल्यवान, सार-सहित और एक देन (*Asset*) के रूप में मानी जाने योग्य है।

रामखिलौनी गर्ग

दो आँखें

—और इस समय सम्राट अकबर का रँगीला-दरबार एक नहीं नौ-नौ रत्नों से जगमगा रहा था। तानसेन की तान से धरा मेरु डोल रहे थे। बीरबल के लतीफे सुन-सुन कर जड़ दीवारें भी मुखरित हो उठती थीं। अबुलफज़ल और फैजी जैसे दार्शनिक विद्वानों की चोंच भरी उक्तियाँ-सूक्तियाँ सुनकर फतहपुर सीकरी के महल पवित्रतम हो जाते थे। राजा टोडरमल ने मालगुजारी और वाणिज्य- व्यवसाय में जो क्रान्ति करके दिखलाई थी— अँगरेज लोग आज भी उसके कायल हैं— तात्पर्य यह है कि उस मेधाविन् के आस-पास इल्म का दरिया बहता था और भगवती सरस्वती की वीणा झंकृत होती रहती थी। इतिहासकारों ने उसके राज्य को सु-राज्य के नाम से लिखा है।

× × ×

—दो आँखें—

बादशाह सलामत सम्मन-बुर्ज पर टहल रहे थे। अभी-अभी कुछ ही दिन हुए जबकि क़िले का यह भाग बनकर समाप्त हुआ है। कारीगरों ने बड़े परिश्रम और चतुरता से इसका निर्माण किया था।

चाँदनी रात छिटक रही थी, दूध से धुली हुई, सुधा में भीगी हुई यमुना की लहरें बुर्ज के निचले हिस्से से आ-आकर टकरा जाती थीं। कोसों तक यमुना का प्रवाह अजस्र धाराओं में बहा चला जारहा था। कवि और शायर इस दृश्य को देखकर निछावर हुए जारहे थे लेकिन सम्राट के मन में अशान्ति थी। वे अभी तक जाग रहे थे। साम्राज्ञी ने लाख कहा, इस्तम्बोल और शर्बत से भरा हुआ गिलास भी पेश किया, अपने प्रेम से डूबे हुए वीणा-विनिन्दित-स्वर से उनको प्रसन्न करना चाहा परन्तु कुछ नहीं हुआ। उन्हें आज शाम के नाच रंग में भी मजा नहीं आया, इसलिए वे टहल रहे थे। कभी-कभी उनकी मुद्रा बहुत ही गम्भीर होजाती थी और कभी-कभी वे मुस्कुरा उठते थे। ऐसा मालूम होता था मानो इस समय वे चाह रहे थे कि कोई उनके पास हो और वे उससे कुछ कहें-सुनें, सीखें और समझायें। जो भी कुछ हो, सम्राट होते हुए भी उनके पास एक मनुष्य का हृदय था। वे अब ज्यादा सहन नहीं कर सके। उन्होंने हलके से ताली

बजाई और एक तातारी बाँदी दस्तबस्ता उनके सामने आ खड़ी हुई !"

"जहाँपनाह !"

"अभी किसी को महाराज बीरबल के पास भेज दो और कहना कि मावदौलत ने उनको याद किया है।"

बाँदी चली गई सिर झुकाकर और सम्राट पास ही रखे एक अधबने संगमरमर के ढोके पर बैठ गये।

थोड़ी देर बाद ही रुन-झुन रुन-झुन की मीठी-सी झनकार ने उनका ध्यान-भंग कर दिया। सामने देखा साम्राज्ञी खड़ी थीं।

"आज तुम कितनी खूबसूरत मालूम होती हो बेगम ! दरिया की सफेद लहरों की तरह फर-फर करता हुआ तुम्हारा दुपट्टा, यह ढाके की मलमल का कुरता और यह रेशमी पायजामा ऐसा मालूम होता है गोया रात की रानी आसमान से जमीन पर उतर आई है।"

"पनाहे-आलम ! सुना करती थी कि आप झूठ नहीं बोलते लेकिन आज यह भी देख लिया कि......"

"कि मावदौलत झूठ भी बोलते हैं क्यों ?"

"जी और क्या ?"

"इन्साफ की बात करो मलिका ! तुम फैजी की शायरी सुनकर क्यों झूम उठती हो ? खानखाना की कविता पर तुम्हारे

मन में क्यों एक हिलोर-सी उठने लगती है? बताओ, सच कहना।"

"कौन ऐसा पत्थर दिल होगा जहाँपनाह! जो कविता और संगीत को पसन्द न करता हो। फैजी और खान खाना की उड़ान, उनकी कल्पना कितनी ऊँची होती है कि दिल बाग-बाग होजाता है।"

"ठीक है, शायर अगर झूठ बोले तो शायरी के दायरे में वह चीज कहलाती है उड़ान—और उस झूठ को सुनकर बेगम साहिबा का दिल-दिमाग नाचने लगता है लेकिन माब-दौलत ने अगर कहीं उड़ान की एक भी बात कहदी तो यह झूठ में शुमार हो जायगा। वल्लाह! क्या इक-तरफा फैसला है?"

मलिका-ए-मुअज्जमा मानों शर्मा गईं। वे खिलखिला कर हँस पड़ीं और मानो इसी हँसी में उनकी हार भी छिपगई।

"आप जीते जहाँपनाह! और मैं हारी।"

"तुमको मालूम है माबदौलत हारने वाले को सजा भी देते हैं।"

"सरे तसलीम खम है।" बेगम ने बड़े अन्दाज से अपना सिर झुका दिया।

"बुलन्दी पर शबाबे हुस्न का आना बेहतर है मलिका"

इतना कहकर मानव हृदय अकबर ने अपनी प्रेयसी की ठोड़ी पकड़ कर उसका चाँद-सा मुखड़ा ऊपर उठा दिया। चन्द्र को दोष लगने ही वाला था कि महाराज बीरबल के खाँसने की आवाज़ सुनाई पड़ी। बेगम पास वाले दरवाज़े से एक ओर को चली गईं और बीरबल ने सम्राट को सलाम किया।

"बीरबल"

"ग़रीबपरवर"

"माफ़ करना—इस वक्त एक खास काम से तकलीफ़ दी गई है।"

"मैं जानता हूँ सरकार!"

"क्या ?"

"कोई नई बात आई होगी जहाँपनाह के दिमाग़ में"

"हाँ, नई और एकदम नई"

"फ़रमाइये"

"मैं सिर्फ़ यह जानना चाहता हूँ कि दुनिया सचमुच पागल है या नहीं"

"बिल्कुल नहीं"

"तुम्हारी राय है कि दुनिया क़तई पागल नहीं है।"

"जीहाँ"

"क्यों ?"

"इसलिए कि इन्सान जब पागल होजाता है तो अपनी शख्सियत यानी व्यक्तित्व को भूल जाता है। उसमें अपने पराये का भेद नहीं रहता। उसकी नजरों में तमाम दुनिया उसके लिए एक है। वह सब में एक भगवान को देखता है।"

"अजीब बात कह रहे हो बीरबल"

"जी, बात सुनने में अजीब मालूम होती है लेकिन है सच। हमारे पड़ोस में ही तो चीन है, जहाँपनाह ! वहाँ के रहने वाले पागलों की पूजा करते हैं।"

"लेकिन हिन्दुस्तान में तो पागल को ईंट और जूतों से मारते हैं।"

"इसकी वजह है इन्सान का घमण्ड। वह समझता है कि दुनिया में जो कुछ मैं जानता हूँ वह और कोई नहीं जानता, जबकि असलियत यह है कि जो सब कुछ जानता है वह कुछ भी नहीं जानता। सम्राट ! चीन के विद्वानों का कहना है कि पागल होकर मनुष्य अपने-तेरे के झगड़े से ऊपर उठ जाता है। उसे मान और अपमान का ध्यान नहीं रहता। आप देखिए, दुनिया में कोई एसा आदमी है जिसे आप खिलअत बख्शें, उसकी इज्जत को चार चाँद लगावें और वह खुश न हो। दूसरी तरफ आपने कोई एसा भी इन्सान देखा है जिसे सरकार भरे दर-

बार में बेइज्जत करें, कड़ी से कड़ी सजा दें और वह खुश होता हुआ उसे बरदाश्त करले।"

"यह सब बातें तो एक फ़क़ीर ही कर सकता है।"

"और उसको हम लोग परमहन्स कहते हैं सरकार! चीन वाले कहते हैं कि पागल इन्सान इसी मरतिबे को पहुँच जाता है। वे उसके गले में फूलमालाएँ डालते हैं। उसकी पूजा करते हैं। सम्राट! पागल यानी देवता और पागलपन यानी इन्सानियत।"

"फिर यह आपसी तकरारें? मसजिद और मन्दिरों की इज्जतों का सवाल? अज़ाँन और आरती का प्रश्न? यह सब क्या है?"

"इसका नाम है सनक। सनकी आदमी जब सनक में आजाता है तो अपनी अँगुली को ही काट खाता है, सिर्फ यह देखने के लिए कि उसकी अंगुली का कोई वजूद है या नहीं, उसके हाथ में वह अंगुली मौजूद है या नहीं, इतने बड़े शरीर में उसकी भी कोई अहमियत है या नहीं। इसी तरह अपना-अपना वजूद अपनी-अपनी स्थिति का ज्ञान कराने के लिए यह सब प्रश्न उठाये जाते हैं।"

"तुमने ठीक कहा बीरबल! बड़ा ही अच्छा हो अगर दुनिया पागल हो जाय तो ये तमाम झंझट ही जाते रहें।"

सम्राट ने मौन भाव से एक अलसाई हुई नजर यमुना की लहरों पर डाली। बीरबल ने देखा, दोनों का हृदय उज्ज्वल है, कितना उदार है और कितना निर्मल है परन्तु लहरों की तरह दोनों ही अशान्त हैं।

× × ×

कबीर जैसा महात्मा कह रहा था,—"मुल्ला मसजिद बांग दे, का बहिरो भयो खुदाय?"—"अरे साधो दोऊन की मति नासी। एक हिन्दू एक तुरक कहावें सेवें काबा-काशी" और तुलसी जैसा सन्त उपदेश कर रहा था—"सियाराम मय सब जग जानी—करहुँ प्रणाम जोरि युग पानी" खानखाना जैसा मुसलमान कवि हिन्दी-कविता में प्रचार कर रहा था :—"रहिमन अपने बन्धु को कबहुँ न दीजै त्रास"—परन्तु मुल्ला और पंडित लोग फिर भी अपनी-अपनी खिचड़ी पकाने में मस्त थे।

सुबह ही सुबह ज्योंही मसजिद से "अलहम्द लिल्लाहो" की अजाँ शुरू हुई त्योंही पास वाले मन्दिर के घण्टों की "टन-टन-टन" आरम्भ होगई। मुल्लाओं ने कहा, यह कुफ्र है। नमाज में खलल पड़ता है। काफिरों की इतनी हिम्मत! अरे! राज हमारा, ताज हमारा और साम्राज्य हमारा। फिर भी ये काफिर हिन्दू सिर पर चढ़े आरहे हैं।

हिन्दुओं ने कहा, तुम होते ही कौन हो हमारी पूजा में विघ्न डालने वाले। तुम म्लेच्छ हो, यवन हो, हमारी दया पर आश्रित—हमारे बुलाए हुए मेहमान और अब हमारे ही घर में हमको ही आँखें दिखाते हो?

एक ने दूसरे पर नफ़रत की नज़र डाली, दूसरे ने घृणा से मुँह फेर लिया। चार हाथों में दो लाठियाँ आते-आते रुक गईं क्योंकि ज़माना बादशाह अकबर का था। फिर भी दोनों आगे बढ़े, अपने-अपने हाथों में लम्बी चौड़ी अर्जियाँ लिये हुए। मुल्लाओं का मजमा दाढ़ियों पर हाथ फेर रहा था और पंडित लोग पत्रों में शुभ-लग्न देखने में लगे हुए थे। अपने-अपने हिसाब से दोनों की अर्जियाँ ठीक समय से और ठीक तरीके से बादशाह सलामत के हाथों तक पहुँचा दी गईं।

× × ×

दीवाने-आम में तिल रखने को जगह नहीं है, आज क़रीब-क़रीब सारा शहर उमड़ पड़ा है। सरदार-सामन्त, धनिक-निर्धन सभी लोग आये हुए हैं। सबक़ क़रीने से बिठाया जारहा है। महाराज बीरबल अपने आसन पर विराज मान हैं।

"बाअदब बामुलाहिज़ा होशियार! आलीजाह, जहाँपनाह, दो आलम, शहंशाह जलालुद्दीन अकबर बादशाह तशरीफ़ लारहे हैं।" चोबदार ने ऊँची आवाज़ में घोषणा की सारे वाता-

वरण में शान्ति छा गई। थोड़ी ही देर में सम्राट आये और तुमुल जय-जयकार के बीच अपने राजसिंहासन पर सुशोभित हो गये।

"मावदौलत को आज बहुत खुशी हुई यह देखकर कि हमारी रिआया हमारे कामों में इस क़दर दिलचस्पी लेती है। महाराज बीरबल !"

"जहाँपनाह !"

"मौलवी और पंडित लोग हाज़िर हैं ?"

"दोनों फ़रीक़ मौजूद हैं"

"अच्छा तो मौलाना से कहिये कि वे खुद अपनी तकलीफ़ों का बयान करें"

"शहंशाहे दो आलम ! मौलवी साहब ने आदाब बजाते हुए कहा !– "यह हिन्दू लोगों की महज़ हिमाक़त है कि हमारी नमाज़ जिस वक्त अदा हो ये लोग उसी मौक़े पर घंटे बजाने लगें। शरियत के मुताबिक ऐसा हर्गिज़ नहीं होना चाहिए। जहाँपनाह ! दुनिया में जो इस्लाम को नहीं मानता, उसकी मुखालफ़त करता है वह काफ़िर है।

"मावदौलत पूछना चाहते हैं कि उस शरियत का हवाला दिया जाय"

"कलाम मजीद में साफ़ लिखा है सरकार ! जो खुदा

को नहीं मानता वह काफ़िर है"

"ठीक है जो परमात्मा को नहीं मानता वह काफ़िर है नास्तिक है-लेकिन इस्लाम को न मानने वाली बात कहाँ है ?"

"इसका मतलब यही लिया जायगा पनाहे दो आलम !"

"खुदा अकेले मुसलमानों का नहीं है। खुदा सबका खुदा है। तुम उसे जिस नाम से पुकारते हो मुमकिन है दूसरा उसे दूसरे नाम से पुकारे - तो इसके मानी यह हुए कि वह काफ़िर है ? बोलो, माबदौलत जवाब चाहते हैं।"

"आप सही फ़रमा रहे हैं जहाँपनाह ! मैं माफ़ी चाहता हूँ लेकिन हमारा इन्साफ़ तो होना ही चाहिए"

"इन्साफ़ होगा और जरूर होगा थोड़ा सब्र कीजिये। हाँ पंडित जी ! माबदौलत के सामने आपको क्या कहना है ?"

"सम्राट ! हमारे शास्त्रों का कहना है- स्वधर्मे निधनं श्रेय परधर्मो भयावह-अपना ही धर्म श्रेष्ठ है और दूसरे का धर्म भयावना है।"

"और यह भी कहीं लिखा है कि परधर्म को नुक़सान पहुँचाओ ? दूसरों की पूजा में विघ्न डालो ? दूसरे लोगों को भगवान का नाम मत लेने दो ?"

"नहीं, ऐसा कहीं और किसी भी धर्म में नहीं कहा गया है।"

"फिर क्यों मजहब के नाम पर आप लोग अपने आपको गुमराह कर रहे हैं। मौलवी साहब! अपने-पुलाव जर्दे के लिए दूसरों को कटवाना अच्छा नहीं है और पण्डित जी! खीर-पूरी की खातिर लोगों का भड़काना कोई पुण्य का काम नहीं है।"

दोनों चुप थे। सारे दरबार में सन्नाटा था। सभी उत्सुकता पूर्वक देख रहे थे कि अब आगे क्या होगा।

"लेकिन आपने जो अर्जियाँ दी हैं उनका इन्साफ जरूर होगा"

बादशाह ने हल्की-सी ताली बजाई और फौरन ही एक हट्टा-कट्टा काला-सा जवान पुरुष लोहे की दो लाल-लाल सलाखें हाथ में लिए सामने आगया। दरबार के लोग डर गए। शहन्शाह न जाने क्या करेंगे।

"माबदौलत का हुक्म है कि एक सलाख मौलवी साहब के हाथ में देदी जाय और एक पंडित जी के"

दोनों को दोनों सलाखें थमा दी गईं। लोगों की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँची जारही थी कि यकायक बादशाह सलामत नीचे उतर आये और दोनों व्यक्तियों के सामने खड़े होकर बोले :—

"देख रहे हो मौलवी साहब और पंडित जी! ये मेरे चेहरे पर कितनी आँखें हैं?"

"दो" दोनों का उत्तर एक था।

"इसमें से तुम्हें कौनसी प्यारी मालूम होती है मौलाना!"

"दोनों ही प्यारी लगती हैं जहाँपनाह!"

"और तुम पण्डित जी! तुम्हें कौनसी सुन्दर लगती है?"

"दोनों ही सुन्दर हैं सरकार!"

"तो लो बढ़ो आगे मौलवी साहब और पण्डित जी! सम्राट की जो आँख तुम्हें प्यारी न लगती हो उसमें यह सलाख डालदो। उसी आँख को फोड़ दो। दीवानो! हिन्दू और मुसलमान मादर-दौलत की दो आँखें हैं – बोलो मैं किसे प्यार करूँ और किसे ठुकरादूं? कौनसी आँख को अपने चेहरे से दूर करदूं? बोलो, बोलो, चुप क्यों हो?"

—और दोनों हठी-नेताओं ने अपनी-अपनी सलाखें बड़े अदब के साथ सम्राट के चरणों के पास रखदीं। सलाखों की गर्मी के साथ-साथ पण्डित जी और मौलाना साहब की गर्मी भी शान्त हो गई।

—और लाख पीछा करने पर भी वह गिलहरी उसके हाथ नहीं आसकी। वह उसे पकड़ ही लेना चाहती थी--बड़े मनोयोग से, चुप-चुप हलके-हलके और दबे पैरों वह उसका पीछा करती, लेकिन कम्बख्त कभी कोई पत्ता खड़क जाता और गिलहरी सर्र-से दूर भग जाती या कभी हवा के झोंके से एक जोर की सरसराहट पैदा होकर उसे सावधान कर देती। एक बार तो वह फिसलते-फिसलते बची। उसने झाँक कर देखा कि यदि वह सचमुच ही फिसल जाती तो?—तो जिस खड्ड में गिरती वह दो हजार फीट नीचा था। कुन्दन-सा शरीर चकनाचूर हो जाता। उसकी बोटी-बोटी छितरा जाती। एक बार भय के मारे उसने पीछे लौटना चाहा। लेकिन मन ने नहीं माना। किसी ने उससे कह दिया था कि भगवान् रामचन्द्र जब सीता की खोज में "हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेनी" सम्बोधन करते हुये प्राणीमात्र से अपनी प्रियतमा के विषय में प्रश्न कर रहे थे तब एक छोटी-सी गिलहरी ने उनका मार्ग-प्रदर्शन किया। पूँछ उठाकर इशारा करती हुई वह उनको उस स्थान तक लेगई जहाँ पर जटायु मरा पड़ा था और यहाँ पहुँच कर श्रीराम को यह मालूम होगया कि सीता का हरण दशानन ने किया है। श्रीराम ने बड़े प्यार से इस छोटे से प्राणी पर अपना कोमल हाथ फेरा, सो उसकी पीठ पर भगवान की अँगुलियों के चिन्हों के स्वरूप ही यह धारियाँ दिखाई देती हैं और जो भी इन धारियों को छूकर अपनी आँखों से लगा लेता है उसे मनचाहा वर या मन पसन्द वधू

मिल जाती है। बालिका को यही जिद थी। वह इसीलिए गिलहरी को छना-पकड़ना चाहती थी। उसके मन में लगी हुई थी कि उसे बहुत सुन्दर दुल्हा मिले। अभी पिछले साल जिस लड़की की शादी हुई है, उस बेचारी का दुल्हा सुन्दर नहीं कहा जा सकता था। नाक भी कुछ ऐसी ज्यादा अच्छी नहीं थी और चेहरे पर भी कोई आकर्षण नहीं था। वह ऐसा पति बिल्कुल नहीं चाहती। उसने उसे देखकर घृणा से नाक-भौं सिकोड़ ली थीं। इसीलिए वह गिलहरी के पीछे-पीछे दौड़ लगा रही थी यों समझिए एक गिलहरी के पीछे दूसरी गिलहरी दौड़ रही थी। दोनों पेड़ों पर चढ़ीं, मैदानों में भागीं, लेकिन चार पैर की गिलहरी को दो पैरों वाली गिलहरी से हार माननी ही पड़ी। बड़ी मजेदार घटना हुई। गिलहरी दौड़कर एक पेड़ पर चढ़ गई और जैसे ही पूर्णिमा भी उसके पीछे जा धमकी तो गिलहरी डर के मारे धम से नीचे कूद पड़ी। नीचे था कांटों वाला पौधा, काफी दूर तक फैला हुआ लंबा-चौड़ा। बेचारी कांटों में बिंधकर रह गई। मौका गनीमत देखकर पूर्णिमा भी पेड़ से कूद पड़ी और उसने बड़े प्यार से उसे पकड़ लिया, उस पर हाथ फेरा फिर आंखों से लगा लिया। मानो बालिका को दरकार प्राप्त होगया।

× × ×

जो लोग बड़े-बड़े शहरों में रहते हैं, वे गांवों में रहना पसन्द नहीं करते। कोलाहल उनके चारों ओर अपनी धमा-चौकड़ी मचाता रहे। दंगे और फसादों की हवाएँ

चलती रहें। मानव पशु की तरह मानव के साथ बरताव करता रहे फिर भी शहर वह शहर है जो भोले आदमियों की निगाहों में चका चौंध पैदा कर देता है।

और गाँव ? – शान्त वातावरण, कोई चिन्ता नहीं, सन्तोष की प्रतिमूर्ति। एसी ही एक पहाड़ी की अमराई में पूर्णिमा और उसका परिवार रहता है। ये लोग पहाड़ी हैं, वे पहाड़ी जिनको मैदान की हवा नहीं लगी है। जो ईमानदारी का विरोधी शब्द बेईमानी नहीं जानते हैं। जो मालिक के लिए अपना जीवन भी हँसी-खुशी से न्योछावर कर देते हैं। घरके बड़े-बूढ़े रामसिंह को सभी काका के नाम से पुकारते हैं। उसके परिवार में वह स्वयं, उसकी स्त्री, बेटी पूर्णिमा और बेटा नैनसिंह यही चार प्राणी हैं। लड़की बचपन और युवावस्था की दहली पर खड़ी है। लड़के का विवाह हो चुका है लेकिन बहू का गौना नहीं हुआ था। इसलिए वे चार के चार ही थे। काका जी हँस कर कहा करते थे :— "हमारे भाग्य में चार ही रहना लिखा है। जबतक नैना की बहू आयगी पूर्णिमा का विवाह हो जायगा और जबतक नैना के बाल बच्चा होगा तबतक मैं या उसकी मा टुलक जायगी–बस, रहगये वही चार के चार" और काका जी की एसी बात सुनकर सबके सब बड़े जोरों से हँस पड़ते थे। उनकी निर्दोष हँसी से सारा वातावरण मुखरित हो उठता था। उनके पास कुछ खेत थे और कुछ दूध देने वाले जानवर सब लोग कसकर मेहनत करते

थे और उसका आनन्द उठाते थे।

आज सुबह ही सुबह काका जी कपड़े लत्ते पहन कर कहीं जारहे थे कि सामने से पूर्णिमा पानी का भरा हुआ घड़ा लेकर आगई।

"अरे काकाजी! कहाँ" बच्ची ने पूछा।

"टोक दिया? चुप-चुप! आज तो बहुत अच्छा शकुन हुआ है। ले" यह कह कर काकाजी ने एक पैसा उस घड़े में डाल दिया।

"अच्छा, हाट को जारहे होगे? हाँ मेरे लिए····क्या लाओगे काका!"

"एक बड़ा सुन्दर-सा दूल्हा।"

"धुत्" फिर वह शर्म के मारे मकान के अन्दर चली गई।

शकुन हुआ—यह देख कर काकाजी के मन को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। उसे कुछ विश्वास-सा हो गया कि इसबार खाली नहीं लौटना पड़ेगा। सच पूछिए तो हुआ भी एसा। जिस लड़के का उसने पता पाया था, वह काकाजी को नजरों में समागया। गोरा-चिट्टा, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बा-तड़ङ्गा और भीगी हुई मसें। शरीर मानो संगमरमर से काट कर बना दिया गया हो। काका की बाछें खुल गईं। उसने फौरन ही एक रुपया और नारियल लड़के के हाथ पर रख कर रस्म की अदायगी कर दी। रिश्ता पक्का होगया।

× × ×

पूर्णिमा ने जब अपने घूँघट में से थोड़ा-सा झाँक कर देखा तो वह ठगी-सी रहगई। इतने ढेर-सारे आदमियों के बीच में केवल वही एक 'अपना' जान पड़ रहा था। बड़े-बड़े नेत्र, उन्नत वक्षस्थल, आजानु भुजाएं, भीगी हुई मसें और चढ़ती हुई जवानी। वह एक बार आनन्द से विभोर हो उठी। उसकी पालकी के समीप ही काले घोड़े पर सवार चलरहा था रामसिंह, धीरे-धीरे जनवासे की चाल से। उसके आगे पीछे रथ, गाड़ी और बहुत सारे खच्चर और घोड़े बढ़े चले जारहे थे। पूर्णिमा विदा होकर अपनी ससुराल जारही थी।

दूर, बहुत दूर उसने अपने माता-पिता और भाई को, एक छोटे से परिवार को लगभग सदैव के लिए छोड़ दिया था। वह जिस प्रदेश में जारही थी वह उसके लिए बिल्कुल अपरिचित था और वह भी उसके लिए नवीन थी, नव-वधू थी. इसी लिए अबाध मचलती पूर्णिमा चुप-चाप चली जारही थी नहीं तो इन पहाड़ियों में और उन पहाड़ियों में भेद ही क्या था। वह तो पतली-पतली पगडंडी पर दौड़ कर चलने वाली बालिका थी। जिसे आज एक पैर उठाना भी भारी हो रहा था। यही तो वे झीलें और झरने हैं जिनमें कूद कर-छलक कर उसने अपने साथियों को चकित-विस्मित कर दिया है, लेकिन आज तो वह प्रेम के अथाह सागर में उद्बुद्ध हो गई है। आज किसी अपरिचित ने उसका हाथ थाम लिया है और वह कपिला-गाय की तरह उसके साथ धमधाम से चली जारही है।

वह पालकी पर पड़े हुए परदे को हटा कर अपने प्रियतम की बाँकी छबि को निहार लेती है। उसे विश्वास होगया कि गिलहरी को छूकर आँखों से लगा लेने का फल उसे सचमुच ही मिला और पूरी मात्रा में मिला। जब कभी रामसिंह से उसकी आँखें चार हो जातीं वह शर्म से गड़ जाती और रामसिंह हल्की-सी मुस्कान से उसके हृदय में सिहरन-सी भर देता था। वह भी फूला नहीं समा रहा था। पूनम के चाँद जैसी पत्नी उसे मिली थी न! सोचता था उसने जीवन भर भगवान शङ्कर की जितनी आराधना की, उसके फलस्वरूप उसे एसी सुन्दरी-वधू मिली है।

जीवन की सुनहली घड़ियों की तरह यह कारवाँ चला जारहा था विजय प्राप्ति के बाद जिस उल्लास और आनंद के साथ सिपाही के क़दम आगे बढ़ते हैं—रामसिंह की अवस्था उससे कुछ भिन्न नहीं थी। वह आज अपने आप को खोया हुआ सा अनुभव करता चला जारहा था।

सब लोग घर पहुँचे। सास ने बहू और बेटा पाया। बरातियों ने स्वादिष्ट भोजन और बधाइयां पाइं। पिता ने सब से क्षमा चाही और इसके बाद धीरे-धीरे करके आनन्द की मात्रा केवल दो ही प्राणियों तक सीमित होकर रह गई।

× × ×

पैसे की आवश्यकता किसे नहीं होती। बड़े से बड़ा अमीर और छोटे से छोटा गरीब सभी तो पैसा चाहते हैं। रामसिंह के सामने समस्या थी अपना कर्ज़ चुकाने की। उसने

सौ रुपये महाजन से लिये थे। वह नहीं देख सकता था कि उसकी रानी जैसी बहू के पास दो-चार जेवर भी न हों। अब पूर्णिमा के पास तीन-चार चीजें थी चाँदी की लेकिन रामसिंह की गर्दन में लोहे की जंजीर पड़ गई थी।

पहाड़ी के नीचे कुलियों का अड्डा था, जिनका काम था मुसाफिरों का माल ढोना। मोटरें आतीं और अपने साथ हजारों मन सामान लातीं। कुली लोग इधर-उधर से दौड़ पड़ते। बाबू लोग मोल-भाव इसलिये नहीं करते थे कि रेट मुकर्रर थीं। सब लोग सामान ले-लेकर चल पड़ते। रिक्शे वालों के रिक्शे दौड़ते और कुलियों के पैरों में वायु की गति भर जाती थी। टेढ़ी-मेढ़ी राह पर चढ़ाई चढ़ना, भयङ्कर शीत में भी केवल एक ही फटी क़मीज़ में सी-सी करते हुये यात्री को निश्चित स्थान पर पहुँचाना कोई हँसी खेल का काम नहीं था। कभी-कभी तो पूरे दिन-दिन भर के बाद भी दस-बारह आने के पैसे पल्ले पड़ते थे। बस, इतना-सा ही लेकर रामसिंह अपने घर लौटता था। घर था, काठ का मकान, उसमें दो कमरे, एक तरफ़ काठ का सन्दूक टूटा हुआ-सा, जिस पर पाँच-छह गिलास चाय पीने के लिये तरतीब से रखे हुए थे। थका माँदा रामसिंह जब घर पहुँचता और पूर्णिमा उसे बड़े स्नेह से चाय पिलाती तो थोड़ी देर के लिये वह तमाम विपत्तियों को भूल जाता था।

एक दिन की बात है। नीचे मैदान से ऊपर पहाड़ पर आने वाली मोटर कुछ देर से पहुँची थी और इस पर भी

तुरी यह कि मुसाफिर गिने-चुने थे। दूसरे कुलियों के साथ रामसिंह भी दौड़ा। पीछे की सीट से एक छोटा-सा बच्चा उतरते-उतरते फिसल ही तो गया लेकिन रामसिंह ने बड़ी फुर्ती के साथ उसे बीच में ही थाम लिया। एक देवी ने उसे देखा और वह बड़ी प्रसन्न हुई।

"तुम बहुत अच्छे आदमी हो "शाबाश"

"क्या हुआ" उसके पीछे उतरने वाले पुरुष ने जमीन पर पैर रखते हुए कहा,

"होता क्या, यह कुली अगर सुरेश को बीच ही में न रोक लेता तो बेचारे की जान ही चली जाती।"

"आह!" यह कहते हुए पुरुष ने रामसिंह को एक रुपया देते हुए कहा :—"यह तुम्हारा इनाम है।"

"सरकार! हम लोग पहाड़ी हैं। सेवा के बदले में पैसा लेना नहीं जानते। जैसा आपका बच्चा वैसा ही······"

"हाँ, वैसा ही क्या?"

वैसा ही मेरा ········ हजूर।"

"तो इतनी-सी बात कहते-कहते ही तुम रुक क्यों गये?"

"बात यह है सरकार! कि मेरा बच्चा कुछ ही दिनों में जनम लेने वाला है।"

"ओह! और शायद तुम्हारा पहला बच्चा है।"

"जी"

"बड़ा लजालू आदमी मालूम होता है" स्त्री ने कहा:—

"अच्छा जी ! सामान उठालो"

रामसिंह ने सामान उठा लिया। दोनों स्त्री-पुरुष घूमने आये थे। पुरुष फौज में कोई बड़ा आफीसर था। उसकी सज-धज और वेशभूषा देखकर रामसिंह को बड़ी खुशी मालूम हुई।

"तुम तो एक दम नौजवान है" उस पुरुष ने पूछा

"जी" रामसिंह ने 'हामी' भरली

"तो फिर नौकरी क्यों नहीं कर लेता ?"

"वे पढ़ा लिखा, कौन नौकरी देगा ?" उसकी नजर में पढ़े लिखे ही नौकरी कर सकते थे लेकिन कैप्टिन साहब ने इसे छिपा हुआ मजाक समझा और वे मुस्कुरा कर रह गये।

"नहीं, नहीं, हम फौज में कैप्टिन हैं। तुम सिपाही होना चाहोगे तो हम तुमको नौकरी दिला देंगे"

"जी शाब !"

"देखो जमादार" उसने अपने अरदली से कहा:—"इस पहाड़ी की ऊँचाई नापलो"

"जी हुजूर !.....पाँच फुट नौ इंच है सरकार" अरदली ने नाप कर बताया

"बस तो ठीक है। तुमको शुरू-शुरू में बीस रुपये महीना मिलेगा।"

"सिर्फ बीस रुपया ?"

"नहीं, नहीं कपड़ा और खाना मुफ्त मिलेगा। बोलो क्या बोलता है ?"

"मैं कल जवाब दूंगा साहब"

उसके बाद रामसिंह घर चला गया। साहब ने उसे आठ आने की जगह एक रुपया देदिया था। रास्ते भर वह न जाने क्या-क्या सोचता गया। खाना और कपड़ा जब मुफ्त ही मिलेगा तो बीस रुपया उसके घरवालों के लिये बहुत है और फिर कहीं तरक्की होगई तो? किसी दिन वह भी हवलदार और हवलदार से जमादार बन सकता है। फिर उसे किस बात की कमी रहेगी? जेबें रुपयों से भरी होंगी और वह फौजी जूतों को पटकता हुआ जब पहाड़ी-भाइयों में लड़ाई की बातें सुनायेगा तो लोग आँख और मुँह फाड़-फाड़कर रह जायँगे। उसकी पूर्णिमा भी वैसे ही जार्जेट की साड़ी पहनेगी जैसी आज मेम-साहब पहने हुई थी। क्या हुआ हिन्दुस्तानी थी तो बिल्कुल अँगरेज की बेटी जैसी मालूम हो रही थी। अरे! फिर पूर्णिमा भी रूप रङ्ग में किससे कम है? लोग उसे भी मेम-साहब समझ कर झुक-झुक कर सलाम करेंगे। क़र्ज़ा भी थोड़े दिनों में साफ हो जायगा और बच्चे की पढ़ाई लिखाई का भी माकूल इन्तजाम हो सकेगा। न होगा तो सरकार से लिखा-पढ़ी करके वह देहरादून के किसी भी स्कूल में उसे भरती करा सकता है।

सोचता- विचारता रामसिंह अपने घर जा पहुँचा। उसने अपने मनकी सारी बातें पूर्णिमा को सुना दीं।

"घर छोड़ बाहर क्यों जाते हो, यहीं क्या तकलीफ है?" उसने कहा,

"रानी! घरसे बाहर काम करना पड़े तो मालूम पड़े क्या तकलीफ है। ढाई मन का बोझा पीठ से बाँधकर पहाड़ पर चढ़ते समय बाप-दादे याद आ जाते हैं।"

"आखिर मरदों के काम औरतें करने लगेंगी तो फिर मरद क्या करेंगे?"

इस हँसी के बाद भी रामसिंह ने उसे काफी समझाया बुझाया। अपनी कल्पना के नन्दन-कानन में विहार कराया। सोने के दिन और चाँदी की रातें हमारी हो होंगी यह सब कहा-सुना परन्तु पूर्णिमा ने अन्तर से सहमति नहीं दी।

सुबह हुआ रामसिंह मा-बाप के पैर छूकर पूर्णिमा से विदा होकर कैप्टिन साहब के पास लौट आया।

"क्यों रामसिंह?"

"सरकार! नौकरी करना माँगता हूँ।"

"अच्छा, यह एक महीने का बीस रुपया लो। इसे तुम अपने घर दे आओ। फिर हम तुमको काम पर भेज देंगे।"

चुप-चुप जाकर रामसिंह ने बीस रुपये पूर्णिमा के हाथों पर रख दिये। चमकते हुए चाँदी के बीस टुकड़ों को पाकर बेचारी पूर्णिमा का चहरा खिल उठा। उसने स्वामी के पैरों को आँसुओं से धोकर विदा देदी। कौन जाने वह कभी लौटेगा या नहीं?

× × ×

"हुकम सिदियर" उसने अनपढ़ सिपाहियों की तरह

रटे हुए वाक्य को दुहरा दिया। वह बेचारा बिना पढ़ा लिखा आदमी क्या जाने कि "हुकम सिद्दियर" और 'हू कम्स देअर' में क्या अन्तर है। जिस तरह उसे बोलना बताया गया था वह उसी तरह बोलने लग गया था।

यह उसकी नौकरी का बाईसवाँ दिन था। अपनी रेजीमेन्ट में आकर सबसे पहिले उसे रक्षा का भार सौंपा गया था, बड़े विश्वास के साथ और उसे निभा रहा था प्राणों की बाज़ी लगा कर।

उस रात पानी भी बरस रहा था और हवा भी चल रही थी तीर की तरह सन-सन करती हुई लेकिन वह अपनी जगह से तिल भर भी टलता नहीं था। उसके दिमाग में केवल एक ही बात थी, एक ही धुन थी और एक ही विश्वास था—जिसका नमक खाया है, जो हमारा मालिक है उसके साथ धोका नहीं करना चाहिए, नमक हरामी करना पाप है।

सुबह सूबेदार ने जब दूसरी 'तैनाती' की तो रामसिंह के पैर लड़खड़ा रहे थे। आँखें सुर्ख हो रहीं थीं और सारा बदन भट्टी की तरह जल रहा था।

"क्या बुखार आगया जमादार!"

"जी सूबेदार साब!"

"रात भर पानी में भीगते रहे?"

"जी सूबेदार साब!"

"हट क्यों नहीं गये? शेड में चले जाते?"

"नमक हरामी नहीं सीखी है मालिक!"

"इसमें नमक हरामी की क्या बात है पगले! छुट्टी ले

अपने-अपने बंगलों में सो रहे थे, इस वक्त देखने भी कौन आता ?"

"यह ठीक है सूबेदार साहब ! कोई भी न तो देखने ही आता और न शायद इस अँधेरी रात में देख ही पाता लेकिन वह तो नहीं सो रहा था –" यह कहते-न-कहते उसने अपनी अँगुली आसमान की ओर उठा दी :— "मुझे उसका डर मालूम हो रहा था शाब" उसके लाल-लाल नेत्रों में आँसू छल-छला उठे लेकिन बरसाती बूँदों के हल्के-से छींटों ने उनको अपने पवित्र अस्तित्व में छिपा लिया।

सिपाही न जाने किस बात को याद करके रो पड़ा था।

× × ×

घर से उसे पत्र मिला था लिखा था, तुम्हारे घर में फूल जैसा सुकुमार बेटा पैदा हुआ है। शक्ल बिल्कुल तुम्हारी जैसी है। रामसिंह निहाल होगया। उसने बड़े साहब को जाकर सलाम किया और सारा वृत्तान्त भी सुना दिया। छुट्टी माँगी एक महीने की—मिलगई। बाजार से उसने न जाने क्या-क्या बच्चों के सामान खरीद डाले। अपनी छोटी-सी मोटर-साइकिल लेकर वह अपने देश की ओर चल पड़ा। अब रामसिंह हवलदार होगया था। उसकी ईमानदारी की धाक तमाम रेजीमेन्ट भर में गूँज गई थी। घर पहुँच कर उसने सब को दावत दी। अब उसके अच्छे दिन आगये थे। घर की निर्धनता दूर हो गई थी। साथी उसकी उन्नति पर प्रसन्न थे। वे मैदान वालों की तरह ईर्षालु नहीं थे।

एक पहाड़ी दूसरे के काम आ जाने पर अपना बड़ा सौभाग्य समझता है। यात्रियों की धोती धोना, चौका-बरतन साफ करना। उनके पैर दबाना आदि जितने भी सेवा-कार्य होते हैं वह सभी कुछ करता है और इसे वह अपना धर्म मानता है। यह तो कहिये हमने-आपने उन्हें कुछ-कुछ चालाक बना दिया है परन्तु उनकी ईमानदारी आज भी ज्यों की त्यों है।

एक महीना किधर आया और किधर चला गया कुछ पता नहीं चला। इसी बीच में रामसिंह को जरूरी तार मिला कि वह फौरन रेजीमेन्ट सेन्टर में वापिस लौट आवे।

× × ×

अग्नि मन्द होने से प्राणी को भूख कम लगती है लेकिन इसके विपरीत अजीर्ण होजाने से कभी-कभी जोरों की भूख भी लग आती है। जर्मनी का यही हाल होगया था उसे दानवी-भूख लग रही थी। जिसमें देश के देश समाये चले जारहे थे। उसके इस अभियान से साम्राज्यवाद के पैर लड़खड़ाने लगे थे और छतरी वाले -बाबू की लाखों कोशिशों के बावजूद भी महा-युद्ध रुका नहीं। इधर कौआ चला हँस की चाल। छोटे-से बौने-से जापान ने भी लतियाना आरम्भ कर दिया। अमेरिकन बनिये को बौने ने धर दबाया। चारों ओर मार-काट और बम-बारी ही बमबारी नजर आती थी। लाखों प्राणी योंही मरे चले जारहे थे। सन् चौदह की लड़ाई की तरह इसबार आमने-सामने की लड़ाइ नहीं थी बालक बमों, गैसों, टैंकों का युद्ध था। योरप में जरमनी और इटली मौसेरे भाई थे और इनका सहा-

यता के लिये कुछेरे भाई जापान महाशय भी कूद रहे थे इस महाप्रशान्त में।

लोग रोज़-रोज़ ऐसे भयी बातें सुना करते थे। अखबारों के ज़रिये ये समाचार, देश के एक कोने से दो कोनों तक पहुँच जाते थे। लोग वाह-वाह कर उठते थे। एक बार समाचार मिला कि दो जापानी आत्मघाती-चालकों ने सिंगापुर के बन्दरगाह में एक जहाज डुबा दिया। लोगों को बड़ा अचरज आया लेकिन भेद खुला तो मालूम हुआ कि दो लड़ाके अपने-अपने हवाई जहाजों में बैठे और उनमें उन्होंने कई हजार मन के बम भर लिये। यह बम बड़े भयङ्कर और विस्फोटक थे। बस, दोनों के दोनों, खड़े हुये जहाज की चिमनियों में आकर गिर पड़े और अन्दर तक चले गये। जहाज की गर्मी से बम फटे और जहाज पानी में डूब गया। लोग इस विनाश की कथा को सुनकर काँप उठे। लाखों-करोड़ों जानें बरबाद हो रही थीं।

शान्ति के नाम पर भारत ने धन दिया, जन दिये और अपना आत्मिक बल भी दिया। सिपाहियों की टोली पर टोली रण-संग्राम में उतर पड़ीं। अपने मालिक के लिए प्राण भी निछावर करने वाले सैनिक हथेलियों पर सिर ले-लेकर लड़े। लीबिया में, फ्रांस में और यहाँ तक कि जर्मनी की गली-गली में उनकी तूती बोलने लगी। भारतीय आत्मबल के कारण विजय मित्र राष्ट्रों को प्राप्त होनी ही थी।

[illegible]

—विदा—

ब्रेनर की घाटी से आज जर्मनों की और इटालियनों की जो आँधी उठी थी उसे सम्हालना बड़ा कठिन काम था। धुआँधार टैंक जमीन पर चल रहे थे और उन टैंकों के सिरों पर हवाई जहाज उड़ रहे थे। इधर उधर ब्रेन-गनें और बन्दूकों के साथ-साथ हथगोले लिए हुये सिपाही दौड़ रहे थे। खण्ड-प्रलय के बीच भारतीयों की टुकड़ी निश्चल और अटल खड़ी हुई थी। एक बार 'भारत माता के सपूत' अपने सारे बल का संचय करके आगे बढ़ गये। विरोधी लोगों के पैर उखड़ गये। मित्र-सेना ने पीछा किया और सूबेदार रामसिंह के हाथ का झण्डा दुश्मन की चौकी पर फर फरा उठा। सहसा उसके पाँव के पास से एक जोरों का धड़ाका हुआ, सुरंग फट गई थी और उसके साथ ही साथ सूबेदार रामसिंह का नाम-निशान मिट गया।

× × ×

अमराइयों में खेलता हुआ एक पंचवर्षीय बालक अपनी तोतली वाणी से समस्त वातावरण को गुञ्जित कर रहा है। पास ही बैठी उसकी माँ उसे खेल खिला रही है।

"क्या देख रही हो माँ!"

"कुछ नहीं बेटा!"

"नहीं, नहीं "दिखाओ न! तुम्हारे बाप की तस्वीर है।"

"ओह! बाप कब आयेंगे माँ!"

"जल्दी आयेंगे बेटा! दुश्मन को पीठ दिखाकर वे कैसे आ सकते हैं? वे तो भारतीय हैं न?"

मैलीस —— जोशी

"मैं भी जब बड़ा हो जाऊँगा तब लड़ाई पर जाऊँगा मा"

सहसा पूर्णिमा की दांई आँख फड़क उठी। उसने बालक को अपने हृदय से चिपटा लिया।

"मैं तुझे नहीं जाने दूंगी बेटा! एसी जगह मत जाना मेरे लाल जहाँ आदमी आदमी के खून का प्यासा होता है। दुनियाँ के ये लोग कैसे हैं।"

"वह देखो, वह देखो मा! वह कौन आरहा है।"

"कहाँ भय्या! मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई देता"

"वह देखो दूर, वह उन पत्तों में"

"अरे हाँ, वह तो डाकिया है। आज तुम्हारे बापू की चिट्ठी आई होगी। समझे।"

"हाँ, हाँ, तब तो बड़ा मजा रहेगा"

पोस्टमैन ने आतुर पूर्णिमा के हाथ पर मनीआर्डर का एक फार्म रखदिया।

"आज यह कैसी चिट्ठी है। यह तो रुपये का फारम है न?" पूर्णिमा ने कहा।

"हाँ, बहिन आज सिर्फ यही है। अब तुमको हर माह दस रुपया मिला करेगा?"

"क्यों?"

"रामसिंह लड़ाई के मैदान में मारा गया—सरकार की तरफ से तुम्हें 'पेन्शिन' हो गई है—समझीं?"

पूर्णिमा कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ी। आगे

पोस्टमैन ने क्या कहा उसे नहीं मालूम। बालक ठगा-सा रहगया। कुछ-कुछ चेतना लौटने पर पूर्णिमा ने कहा,

"मैं यह रुपये नहीं लूंगी—तुम इनको लौटा दो और इस फारम पर लिखदो कि पूर्णिमा भिक्षा नहीं चाहती। सरकार को दान करना है तो किसी और को दे। मैं भिखारिन नहीं हूँ। ओह! एक जिन्दगी का मूल्य सिर्फ दस रुपये? अंजुलि भर कर चाँदी-सोना भी नहीं? केवल दस रुपये? मैं नहीं लूँगी—नहीं लूंगी।"

—और उसने मनीआर्डर वापिस कर दिया।

तआस्सुब —— ☆

—और जिस तरह कोई थका हुआ मुसाफ़िर लम्बी साँस लेकर आगे चल पड़ता है, ठीक वैसे ही रेलगाड़ी ने घर-घर खर-खर की एक बड़ी-सी आवाज़ करके प्लेटफार्म को छोड़ना ही चाहा था कि मैं अपना अटैची सम्हाले हुए तीसरे दर्जे के एक डब्बे में जा पहुँचा। कुली ने छोटा-सा बिस्तरा फ़ौरन ही अन्दर डाल दिया और मैंने झटपट उसे पैसे दे दिये। क्या दिया यह कुछ याद नहीं पड़ता क्योंकि गाड़ी चल पड़ी थी, उसे लेने की जल्दी थी और मुझे देने की। निश्चिन्त होने के बाद जो नज़र उठाकर देखा तो सभी सीटें घिरी हुई थीं। जो भी हो, ऐसा आना ही कितनी दूर था, एक सरसरी नज़र डालकर मैं जहाँ का तहाँ खड़ा रहगया – लेकिन खड़ा भी नहीं रहसका, बीच ही में एक अवांछित घटना होगई।

"सलाम" एक देवी जी ने अपने बुरके का ऊपरला हिस्सा थोड़ा पीछे की ओर सरकाते हुए कहा :— "यहाँ तशरीफ़ रखिये"

"आप तकलीफ़ क्यों करती हैं बानू! मैं यहाँ ठीक हूँ"

"तकल्लुफ़ की खास ज़रूरत तो मालूम होती नहीं है!"

मैंने कुछ ज्यादा कहना-सुनना बेकार समझा और उसके पास ही बैठ गया। किसी भले घर की औरत मालूम होती थी। सुन्दर सुडौल लेकिन चेहरे पर निराशा की हवाइयाँ-सी उड़ रही थीं। मालूम होता था किसी परेशानी से उलझकर वक़्त से पहिले बूढ़ी लगती आरही हो। काले [illegible]

पर जाली लिये हुए। दो छोटे-छोटे बच्चे साथ में थे। शायद एक लड़का, दूसरी लड़की। थोड़ा-सा सामान। ऐसा मालूम होता था मानो किसी पास की जगह जारही है।

"कहाँ तक जाना है?" मैंने पूछा।

"जाना क्या है भाई! जाना और आना ही इस ज़िन्दगी का राज़ है। इन छोटे-छोटे बच्चों की वजह से मारी-मारी फिर रही हूँ।"

"क्या इनके वालिद…………"

"जी हाँ, वे आजकल जेल में हैं" उसने मेरी बात काटते हुए जवाब दिया। सच समझिये, उस ग़रीब ने अच्छा ही किया वरना मैं तो उन नन्हे बालकों के पिता को यमपुरी ही पहुँचा चुका था। उफ़! उसे भी कितना बुरा मालूम होता। लेकिन, इस जेल के मामले ने मुझे और भी चौंका दिया। तो क्या वह कोई चोर या डाकू है? आख़िर वह जेल में क्यों है? शायद अहरारी या काँग्रेसी हो। लेकिन देश के नाते जेल गया होता तो यह बानू इतनी परेशान क्यों होती?

"आख़िरश बात क्या है—क्यों उनको जेल जाना पड़ा?"

"बड़ी लम्बी कहानी है भाई! तुमको सुनाऊँगी, ज़रूर सुनाऊँगी। एक सच्चा मुसलमान पाकर भी अगर अपने दिलकी बात न कह पाई तो क्या फ़ायदा। लेकिन थोड़ा ठहरिये। स्टेशन करीब है। यहाँ से दूसरी गाड़ी लेनी होगी। तक़रीबन एक घन्टा बाद मिलेगी। यहीं बैठकर सारी दास्तान सुन लीजियेगा।"

इसी समय गाड़ी के एक कोने पर किसी ने आवाज़

लगाई —"ये ग़म की कहानी है सुन लीजियेगा" मेरा ध्यान बट गया, तो क्या इस ग़रीब बहिन की कहानी भी ग़म से भरी हुई है ? वह यतीमख़ाने का बच्चा एक-एक या-दो पैसा माँग रहा था। मैंने उसे दो पैसे देकर आगे बढ़ा दिया। स्टेशन आगया था। कुली पर मैंने अपना और उनका दोनों का सामान रखवा दिया। छोटे बच्चे को गोद में लेकर आगे चल पड़ा।

× × ×

गाँवों में डाक्टर तो होते ही कहाँ हैं और जो हकीम-वैद्य भी होते हैं वे अन्धों में काने राजा ही समझिये। यह लोग जड़ी बूटियों पर ही निर्भर रहते हैं - मिली तो काम कर गई और न मिली तो मरीज़ का काम हो जाता है। ऐसे ही एक गाँव की घटना है। नन्हा-सा बच्चा बीमार था, बड़े ज़ोरों का बुख़ार और खाँसी। खाँसते-खाँसते दम अटक जाता और मा-बाप का दम भी उसके साथ ही साथ ऊपर नीचे हो रहा था।

"किसी डाक्टर को बुला कर दिखादो सलीमा" उसकी छोटी बहिन ने कहा,

"कौन आयेगा इतनी दूर चलकर और जो आ भी गया तो जानती हो मुट्ठी भरकर फ़ीस जो देनी पड़ेगी।"

"बुलालो सलीमा! एक-आध चाँदी की चीज़ रख देना। गहना तो फिर भी बन जायगा लेकिन मौला ....." कहते-कहते किसी अपशकुन की आशंका से वहीदन चुप होगई।

"तो अपने बहनोई को बुलाकर कह दे वहीदन ! जो अल्लाह की मर्जी होगी वह तो होकर रहेगा ही।"

और वहीदन ने निज़ाम मियाँ को बुलाकर सारा माजरा सुना दिया ।

"और कोई भी उम्मीद बाकी नहीं है बड़े मियाँ! आखिरी कोशिश कर-लो न! क्या जाने खुदा की कुदरत से कुछ का कुछ हो जाय।"

"लेकिन इस धूप को तो देखो। कौन-सा डाक्टर ऐसा है जो दस मील चल कर यहाँ तक आयेगा। बीबी। कैसा भी रहम दिल इन्सान हो, इन्सान फिर भी इन्सान ही है। हाड़-मांस का बना हुआ। कमज़ोरियों का पुतला।"

"रुपया दुनिया में क्या कुछ नहीं करा सकता" वहीदन ने फौरन बात काट कर कहा,

"लेकिन वह भी तो इस वक़्त मुहय्या नहीं है वहीदन! जानती हो फ़सल कितनी खराब हुई है? जमींदार का लगान ही बाक़ी है। डाक्टर भी कम से कम आठ-दस रुपयों से कम नहीं लेगा।" अध-बूढ़ा निज़ाम मानो चिन्ता के गहरे सागर में डूब गया।

"मैं दे दूँगी बड़े मियाँ! तुम चले जाओ न? जैसे-तैसे मौला की शक्ल देखी है। लोग कहेंगे, रुपये की वजह से लड़के की जान खो दी। तुम अभी चले जाओ।"

एक टूटी-सी घोड़ी लेकर निज़ाम मियाँ शहर फिरोज़ाबाद

चल पड़े। अपनी साली का अनुरोध टालने की शक्ति उनमें नहीं थी और इसके साथ ही साथ वे खुद क्या यही थोड़े चाहते थे कि मौला की अकाल मृत्यु हो जाय। दस वर्षों के बाद जिस घर का चिराग रोशन हुआ था वह गुल हो जाय लेकिन मजबूरी और लाचारी का नाम ही सब्र है। निजाम मियाँ पिछले एक हफ्ते से अपने कलेजे पर पत्थर रखे हुए बैठे थे। आज वहीदन की जिद ने उनको शहर भेज ही दिया। छह बार पानी पीने के बाद और तीन जगह साये में विश्राम करते हुए निजाम-मियाँ डाक्टर साहब के सामने हाजिर हो गये।

"आदाब अर्ज है हजूर"

"सलाम भाई" डाक्टर साहब ने एक सरसरी नजर डालकर देखा मियाँ के चहरे पर धूल-पसीना एक होकर गहरी-पपड़ीं जम गई है। वे समझ गये, बेचारा किसी दूर गाँव से चला आरहा है।

"रामसिंह" डाक्टर साहब ने अपने नौकर को पुकारा।

"जी" एक नौकर फौरन हाजिर होगया।

"बड़े मियाँ को अन्दर ले जाओ। पानी और तौलिया लेकर हाथ-मुंह धुला दो। पूछना कुछ खा-पी लिया है या नहीं। अगर नहीं खाया हो तो चौके में जो भी कुछ बना हो खिला कर हमारे पास लाना।"

निजाम हक्का-बक्का-सा रह गया। यह डाक्टर है या फरिश्ता। वह सुना करता था कि डाक्टर सब काम छोड़कर

सब से पहले अपनी फीस वसूल करता है लेकिन यहाँ तो सारा मामला ही उलटा हो रहा था। पहले खातिर-तवाजह उसके बाद और कुछ।

"आप तकलीफ़ न कीजिये सरकार।" निजाम ने बड़ी विनम्रता से कहा।

"तकल्लुफ़ मत करो बड़े मियाँ! अपना ही घर समझो। जो कुछ रूखा-सूखा मिले खाकर ठंडा पानी पीलो। एक आधे घंटे आराम करलो, मैं तबतक इधर मरीजों से छुट्टी पालूँगा-फिर तुम भी अपनी परेशानी कहना समझे।"

निजाम सिर झुकाकर नौकर के पीछे-पीछे चला गया।

× × ×

"तब तो हालत बड़ी नाजुक है बड़े मियाँ! आखिर इतने दिनों तक क्या करते रहे।" डाक्टर साहब ने बड़े प्यार से पूछा,

"सरकार!" रूँधे हुए गले से निजाम ने कहा! -"गरीबी दुनिया में सब से बड़ा गुनाह है-मैं क्या अर्ज करूँ......"

शायद निजाम आगे कुछ और कहने जारहा था परन्तु बीच में ही डाक्टर साहब ने उसे रोक दिया। वे उस गरीब को लज्जित नहीं करना चाहते थे।

"मैंने समझ लिया तुम फिक्र मत करो। भगवान चाहेंगे तो तुम्हारा बच्चा बिल्कुल ठीक हो जायगा।"

शाम के वक्त, उस सड़ी-सी घोड़ी पर आगे-आगे

डाक्टर साहब और उनके पीछे-पीछे किट-किट करते हुए निज़ाम मियाँ चल पड़े। बैठे-बैठे जब डाक्टर साहब थक जाते तो निज़ाम को घोड़ी पर जबरदस्ती बिठा देते और खुद पैदल चलने लगते। दिन डूबते-न-डूबते दोनों ही गाँव में आ पहुँचे। डाक्टर ने बच्चे को देखा मालिक की कुदरत और घर वालों का विश्वास-बच्चे को दो-तीन छींकें आईं। लोगों ने बताया रोगी का छींक आना बहुत अच्छा है। डाक्टर ने अपने बक्स में से निकाल कर दवा बनाई। मौला को एक खुराक फौरन पिला दी गई। बाकी खुराक निशान लगाकर एक शीशी में भरकर रख दी गई। हर तीन-तीन घंटे बाद देने के लिए कह दिया गया था।

अँधेरे में डाक्टर साहब फ़िरोज़ाबाद कैसे लौटते लिहाज़ा नीम के पेड़ के नीचे चौपाल पर उनकी चारपाई लगादी गई। शहर की जिन्दगी से ऊबा हुआ डाक्टर बड़ी देर तक खेतों की सैर करता रहा। शायद उसे कुदरत के साथ खेलते हुए बड़ा मज़ा आरहा था।

रात में दो बार खुद ब खुद उठकर डाक्टर साहब ने मौला को देखा। उसे नींद आरही थी और खाँसी भी काफी कम हो गई थी। सुबह होते न होते बुखार काफी कम होगया था। ऐसा मालूम होता था गोया डाक्टर क्या है जादूगर है। हाथ फेरते ही तमाम बीमारियाँ छू - मन्तर होगई थीं। वहीदन बार-बार अपनी तारीफ के पुल बाँध रही थी। कहती थी :-"मैंने पहले ही कहा था डाक्टर को

बुलाकर दिखादो। ये गाँव के मुए हकीम समझने को तो अपने आपको हकीम लुक़मान से भी कम नहीं समझते लेकिन जानते-बूझते खाक भी नहीं"

खैर जी, सुबह की किरनें फूटने लगी थी। डाक्टर साहब ने दूसरी शीशी में तीन रोज़ की दवा बनाकर देदी। निज़ाम मियाँ ने दाँत निकालते हुए उनके सामने आठ रुपये पेश किये।

"यह क्या निज़ाम मियाँ। यह क्या है?"

"हम लोग निहायत ग़रीब हैं सरकार"

"सो तो मैं जानता हूँ लेकिन इसकी क्या जरूरत?"

"ले लीजिए हजूर! इतनी ही महरबानी क्या कम है कि आप इतनी दूर तक तशरीफ़ तो ले आये।"

"क्या बात कहते हो निज़ाम भाई। मेरा फ़र्ज है मरीज की खिदमत करना। इसके बाद भी तुम्हारे जैसा इन्सान बुलावे और मैं न जाऊँ तो मुझसे ज्यादा नीच कौन होगा।"

"अब तो इसे कुबूल फरमाइये-जो भी कुछ है"

"नहीं, नहीं यह हम नहीं लेंगे।"

"मैं जानता हूँ डाक्टर साहब! आपके नज़दीक यह आठ रुपये नाचीज़ हैं। लेकिन मेरे लिए....."

"ओह! तुम बड़े सीधे हो निज़ाम मियाँ। मेरा मतलब यह नहीं कि मैं इनसे ज्यादा चाहता हूँ बल्कि मैं तो यह भी नहीं लेना चाहता हूँ।"

"माफ़ कीजिये-मैं ठहरा नाख्वांदा, बे-पढ़ा-लिखा। बहर-

हाल इतना तो कुबूल फरमाइये"

डाक्टर साहब ने चार-रुपये लेकर जेब में डाल लिए। निजाम ने बड़ी आरजू-मिन्नतें कीं लेकिन एक नहीं चली।

दूसरे सुबह डाक्टर साहब फिर अपने मरीजों में व्यस्त थे। कोई पास के गाँव से आया था तो कोई दूर से। कोई दिखा रहा था। कोई लेजाने की तय्यारी में था। अजीब जिन्दगी है डाक्टर की।

"जिस कदर दिन निकलते गये मौला अच्छा होता चला गया। बड़े मियाँ कभी-कभी जाकर दवा ले आया करते थे। यह जो बच्चा आपकी गोद में है न ? इसी का नाम मौला है। "उसने मुझे बताकर कहा।

"भई बड़ा अच्छा डाक्टर है।"

"है कहाँ, अब तो कहिये था। उफ! गरीब की भोली शक्ल आज भी मेरी नजरों के सामने घूम-घूम जाती है।"

"तो क्या हुआ उसे ?"

"बड़ा दर्दनाक किस्सा है भाई! यह हिन्दुस्तान भी अजीबो गरीब जगह है। यहाँ बाप-बेटे का खून कर डालता है। भाई-भाई की जान का गाहक हो जाता है। उफ! यह लोग क्यों जानवरों की तरह एक दूसरे का खून बहाने के लिये आमादा रहते हैं ?"

"यह तो कुदरतन होता है बानू! हर बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। यह तो दुनिया का दस्तूर है।"

"लेकिन हम लोग जानवर तो नहीं हैं, इन्सान हैं और चूँकि इन्सान हैं इसीलिए हैवान से बहतरीन समझे जाते हैं।"

गाँवों में भी ऐसी सुसंस्कृत स्त्रियाँ होती हैं—मुझे यह आज ही जान पड़ा। उसके उत्तर ने मुझे निरुत्तर कर दिया।

"हाँ लेकिन हुआ क्या ?"

"मौला बिल्कुल ठीक हो चुका था, फिर भी यह सलाह की गई कि उसे एक-दो शीशी और पिलादी जावे ताकि फिर से बीमारी का डर जाता रहे। बड़े मियाँ पैदल जाते आते थे। वह सुबह ही सुबह बड़े तड़के उठ जाते और बीस-मील की मंजिल तय करके दोपहर को खाने के वक्त तक गाँव लौट आया करते थे। जिस आखिरी दिन वे गये, उस दिन वे शाम तक नहीं लौटे। या अल्लाह। आखिर हुआ क्या। क्या वे खुद भी बीमार पड़ गये। कहीं जमीन्दार के आदमियों से तो कहा-सुनी नहीं हो गई ? कुछ और का और तो नहीं होगया। मेरा मन धुकर-पुकर करने लगा। लेकिन बड़े मियाँ को तो लौटना नहीं था इसलिए वे नहीं लौटे"

"लेकिन चले कहाँ गये"

"यही तो कह रही हूँ भाई। रात आगई। घरों में चिराग जल गए लेकिन मेरे सूने दिल में गहरा अँधेरा होता चला गया। किसी तरह आँखों में तेल डालकर रात काटी। सुबह हुआ तो देखा थाने का सिपाही खड़ा हुआ है।"

"तुम निजाम मियाँ की घरवाली हो ? सलीमा तुम्हारा ही नाम है ?" उसने पूछा।

"जी। कहिए"

"बड़े मियाँ को शहर में गिरफ्तार कर लिया गया है।

इसकी खबर यहाँ गाँव के थाने में आई है। जमानत वगैरह का इन्तजाम करना हो तो फिरोजाबाद जाकर करो।" दो लफ्जों में सिपाही इतनी सी बात कह कर चलता बना।

"आखिर क्यों गिरफ्तारी हुई? खयाल आया कहीं डाक्टर ने तो फीस-बीस के बदले में नहीं पकड़वा दिया? क्या किसी से मार पीट होगई? बीसियों खयालात दिमाग में चक्कर काटने लगे। अलगरज्ज बीमार-मौला को लेकर जब मैं शहर में दाखिल हुई तो अजीब सन्नाटा पाया। कहीं मकान जले पड़े हैं, कहीं जानवर मरे हुए पड़े हैं। एक अजीब माहौल था। जो सुना करती थी उसे आज आँखों से देख लिया। हिन्दू-मुस्लिम फसाद हो गया था। मजहबी दीवानगी का अजीब मंजर था। मैं बढ़ती हुई थाने पर पहुँची मालूम हुआ गिरफ्तार-शुदा लोग जेल भेज दिये गए हैं। सुना कि तकरीबन पन्द्रह-बीस गिरफ्तारियाँ हुई हैं मुसलमानों की और उनमें से ही एक हैं बड़े मियाँ। लेकिन बड़े मियाँ क्यों पकड़े गये? क्या उन्हें भी मजहबी दीवानगी सवार हो गई थी? तो क्या उन्होंने भी कुछ गड़बड़ कर डाला? बीसियों खयालात आ-जा रहे थे। मौला का और बच्ची को गोद में चिपकाये हुए मैं सुनसान सड़क पर चली जा रही थी। लोग हैरत से एक मुसलमान औरत की तरफ देख रहे थे। कह रहे थे, इसे बिल्कुल डर नहीं मालूम होता। लेकिन मुझे डर किस बात का था भाई! मैंने किसी को नुकसान थोड़े ही पहुँचाया था। थोड़ी दूर पर चलकर मैंने जो देखा उससे मेरा कलेजा काँप गया। तीन-चार लाशों पर कई

एक लाशें रखी हुई थीं। एक-दो पर चार पाँच छोटे-छोटे बच्चे थे। एक पर एक औरत और एक खाट पर...उफ़! भाई! मेरा हमदर्द मेरे बच्चे की जान बचाने वाला डाक्टर मरा हुआ पड़ा था। मैंने उसे देखा, पास से जाकर देखा, गौर से देखा और मेरी आंखों से टप-टप-टप आँसुओं की झड़ी बँध गई।"

सलीमा ने थोड़ी देर रुककर अपनी ओढ़नी के आँचल से बहते हुए आँसुओं को पोंछा। मेरी भी आंखों में आँसू छल छला आये थे।"

मैंने लोगों से पूछा :— "यह क्या हुआ"

"शहर में हिन्दू-मुस्लिम फसाद हो गया था। कुछ लोग डाक्टर साहब की तरफ भी बढ़े चले आ रहे थे। उन्होंने कहा आग लगादो। इस डाक्टर को जान से मार दो-यह हिन्दू है।" एक आदमी ने कहा, :— "बस इसके बाद जो होना था सो हुआ लोग बढ़े और उत्तेजित भीड़ने आग लगा दी। लेकिन बाहर बूढ़े मुसलमान, जानू! एक मियां बैठा हुआ था डाक्टर साहब के पास। जाने दवा लेने आया था किसी गाँव से उसने ललकार कर कहा, नामर्दो! अपने भाई पर वार करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती। जिस डाक्टर ने बीसियों मुसलमानों की जान बचाई आज तुम उसे हलाक करना चाहते हो।?"

—भीड़ के मुँह पर मानो स्याही फिर गई। लेकिर उनमें से एक ने बढ़ कर कहा :—"यह गद्दार है एक काफिर

की हिमायत लेता है, जान से मार दो इसको भी साले को।"

लोग बढ़े और वह मुसलमान डाक्टर साहब को अपनी पीठ के पीछे छिपाये हुए भीतर के आँगन तक लेगया। उसने भीतर से साँकल बन्द करली। इस पर भीड़ ने पेट्रोल डालकर चारों तरफ से आग लगादी। धुएँ से दम घुटकर सब लोग मरगये। डाक्टर साहब की बीबी और वह मुसलमान ही जिन्दा निकले-बस। बाकी सबका खात्मा हो चुका था। पुलिस ने, उस मुसलमान को भी गिरफ्तार कर लिया।

"क्या नाम भी मालूम है उसका भाई!" मैंने (सलीमाने) पूछा,

"बड़े मियाँ कह रहे थे उसे डाक्टर साहब।" एक ने कहा,

"बड़े मियाँ, बड़े मियाँ! उफ़! वह मेरे शौहर हैं। यही वह बच्चा है मौला जिसकी दवा लेने वह आये थे। डाक्टर साहब ने इसकी जिन्दगी तो बचाली लेकिन अपनी ज़िन्दगी न बचा सके। बड़े मियाँ! तुमने इस्लाम की इज्ज़त रखली। डाक्टर ने तुम्हारे बच्चे के लिए अपने को कुर्बान किया तो तुम भी डाक्टर के लिए कुर्बान होगये।

मैंने डाक्टर साहब के कदमों की धूल मौला के माथे पर लगाकर कहा:—"ए नेकी के फरिश्ते! मेरे मौला को एसा 'आशीर्वाद' दे कि वह हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद की एक पुख्ता ज़ञ्जीर की कड़ी बन सके।"

मैं ज्यादा नहीं देख सकी। डाक्टर और डाक्टर के बच्चे

उसकी ग़मज़दा बीवी—काश अगर मैं अपने शौहर को देकर भी उसके खाविन्द को लौटा सकती ? खुदा जानता है अगर उसका एक भी बच्चा जिन्दा हो जाता तो मैं अपने मौला की कुर्बानी से भी पीछे नहीं हटती।

तो उसके बाद, मैं उनसे जेल में मिली। उनके हाथ—पाँव झुलस गये थे। वह ज़ार—ज़ार रोते थे। कहते थे, मैं डाक्टर के कुछ भी काम नहीं आया। उफ़! वह मेरी आँखों के सामने ही तड़प कर रह गये। दम घुट कर रह गया। बेचारा डाक्टर। पुलिस ने उनको ही खास हमलावर बनाया है। पुलिस का कहना है कि बड़े मियाँ दवा के बहाने पहले से ही आ बैठे थे ताकि डाक्टर साहब को बातों में उलझाये रखें। उन्हें रञ्ज नहीं था खुशी थी इस बात की कि वे अपने फर्ज को अञ्जाम नहीं दे सके उसकी उन्हें काफी सजा मिल जायगी।

"मैंने बहुत कोशिश की लेकिन उनकी जमानत नहीं हो सकी है। अब मुक़दमे की पैरवी के लिए आगरा जारही हूँ। देखिये अल्लाह मालिक है।"

"इन्शा अल्लाह! आप देखना बड़े मियाँ बेदाग छूटेंगे और बहुत मुमकिन है एक भले आदमी के साथ गुनहगार भी छूट जायें।" मैंने कहा,

"आपकी दुआ अल्लाह कुबूल करे" सलीमा ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा।

इसी बीच गाड़ी आगई। मैंने अपना—उनका सामान

उठाकर डब्बे में रखदिया। चन्द मिनट ठहरने के बाद गाड़ी चल पड़ी।

"मैं कुछ अर्ज करूँ बहिन"

"फरमाइये"

"यह आप कुबूल फरमाइये--मुकदमे के खर्चे के लिए" और मैंने उसके हाथों में पच्चीस-रुपये दे दिये।

"इसकी कोई जरूरत नहीं" उसने कहा।

"नहीं, नहीं आप ले लीजिये, भाई की चीज को बहिनें वापस नहीं किया करती हैं—हाँ"

उसने ले लिए। लेकिन इसी बीच में एक बड़ी गड़बड़ हो गई। एक जान पहचान के महाशय ने आवाज दी।

"पण्डित जी! नमस्ते। कहिये कहाँ से आरहे हैं?"

मैंने सुना-अनसुना कर दिया लेकिन वे महाशय ऐसे जिद पड़े कि बस अपनी तरफ मुखातिब करके ही छोड़ा।

"कहीं-नहीं फिरोजाबाद से आरहा हूँ" मैंने कहा।

"तो आप भी हिन्दू हैं" सलीमा ने कहा।

"मैं न हिन्दू हूँ न मुसलमान, मैंतो फकत इन्सान हूँ और चाहता हूँ कि दुनिया से हैवानियत मिटकर इन्सानियत का राज होजाय।"

"लेकिन पहनावे से तो आप हिन्दू नहीं जान पड़ते?"

"यह भी खुदा की कुदरत है। मेरी शक्ल ही ऐसी है एक तो और दूसरे शेरवानी पाजामा और गुलबन्द यह सभी कुछ

मुसलमानी-सा मालूम होता है।"

"स्टेशन आचुका था। बेचारी सलीमा उतर पड़ी मैंने दोनों बच्चे उसे सम्हाल कर देदिये।

"शुक्रिया" उसके आखिरी दो अलफाज आज भी मेरे सीने में सुरक्षित हैं। मुझे कैन्ट जाना था।

घर पहुँच कर जब फलों की टोकरी में से बच्चों को फल बाँटने लगा तो देखा एक कोने में पच्चीस-रुपयों के नोट रखे हुए हैं। उफ! यह तो वही नोट थे जो मैंने सलीमा को दिए थे। तो क्या वह रखकर भूल गई? नहीं, नहीं भूलती तो इतने सम्हालकर डलिया में कैसे रखे होते। ओह! तब उसने भाई की भेंट स्वीकार नहीं की।

मित्रों से जब मैंने जिक्र किया तो उन्होंने कहा, भाई तुम हिन्दू वह मुसलमान, तुम्हारी सहायता कैसे स्वीकार करती? उसने तआस्सुब की वजह से रुपये वापस करदिए।

मेरी राय जुदागाना है—मैं समझता हूँ वह बेचारी इतनी भावुक और सरल हृदय थी कि एक दूसरे हिन्दू का अहसान अपने सिर पर नहीं लेना चाहती थी। तआस्सुब वाली बात मुझे 'अपील' नहीं करती।

—आपकी क्या राय है?

× × ×......कैंट ।

ता० ११. २. ४२..

प्रिय दिनेश,

— और कोई शब्द मेरे पास नहीं हैं सिवाय 'धन्यवाद' के, जिनके द्वारा मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रगट कर सकूं। तुम्हारा तार मुझे अभी-अभी मिला है। मैंने दोबार-चार-बार न जाने कितनी बार पढ़ा है। इच्छा यही रही है कि दिन भर पढ़ता रहूँ। तुम्हारा एक शब्द 'कान्ग्रेच्यूलेशन्स' मेरे रोम-रोम में समा गया है। मुझे आज कितनी प्रसन्नता है यह मैं लिखकर नहीं बता सकता। आज मैं बी. ए. होगया हूँ। ग्रेज्युएट। मेरी कामनाओं के पङ्ख निकल आये हैं। मैं देख रहा हूँ अपना सुनहला भविष्य। माना कि जमाना लड़ाई का है लेकिन मित्र जीवन में संघर्ष ही तो मुख्य है। बुरा मत मानना मित्र! तुम्हारी जूतों की दूकान मुझे कुछ भी अच्छी नहीं लगती। क्या मजा है? जो भी गाहक आवे उसके ही पैर पकड़ते फिरो। बीस बातें करो और जैसे बने वैसे उसे जूते मेंड़-भाड़ कर अपने पैसे सीधे करो। तुम देखना मैंने 'एप्लाइ' किया है, महीने-दो-महीने में ही 'सी. जी. ओ.' (सिविलियन गजेटेड आफीसर) हुआ जाता हूँ। शुरू में ही २५०/रु० माहवार मिलेंगे, खाना और कपड़ा मुफ्त। चाहे जो भी कुछ हो जाय, एक बार तुम्हारी दूकान पर जूते पहनने

आऊँगा जरूर। तब देखूँगा तुम मुझे कैसे पटाते हो।

हाँ, भाई मुझे बड़ा अफसोस है तुमने दसवें दर्जे से ही पढ़ना लिखना छोड़ दिया— काश ! कालेज लाइफ का मजा लेते ! और जब डिग्री लेने जाते 'कनवोकेशन' में, गाउन पहन कर फोटो खिंचवाते तो बारा-बारा हो जाते। सैकड़ों-हजारों लड़कों-लड़कियों के बीच में यदि तुमने मिसेज सरोजिनी नायडू का दीक्षान्त भाषण सुना होता तो अपनी किस्मत को सराहते। मेरे कनवोकेशन के समय चीफ जस्टिस महोदय सभापतित्व कर रहे थे। गजब का आदमी है भाई ! 'कितना एक्टिव है' कि बस दो मिनिट के लिए कुर्सी पर 'बैठना' जानता ही नहीं। यानी इस बुढ़ापे में यह हाल है उसका—मैं तो दंग रह गया। मैंने सीखा 'एनरजी' इसका नाम है। क्या तड़प थी बुड्ढे में।

और जिस समय, हाल से बाहर निकला अपना डिप्लोमा हाथ में लिए, सच मानना यार दिनेश ! मेरे पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। मैं दो-तीन दिनों में ही गाँव जाने वाला हूँ। घर पहुँच कर लिखूँगा भाभी को नमस्ते कहना किरण और सुरेश को प्यार।

तुम्हारा ही,

रजन

(२)

× × × दिल्ली रात को ६ बजे

ता०. २८. ३. ४६.

प्रियवर राजेन्द्र,

माफ करना भाई ! तुम्हारे खत का जवाब कुछ देरी से इसलिए दे रहा हूँ कि बिजनिस के सिलसिले में कई मर्तबा

आगरे और कानपुर जाना पड़ा। दम लेने की भी फ़ुर्सत नहीं पा सका। उम्मीद है अब तक तुम्हारी सर्विस लग गई होगी। अच्छे खासे कैप्टिन मालूम होते होगे—मुबारिक !

जूते खरीदने तुम दिल्ली तक जरूर आना वरना शिकायत बाक़ी रह जायगी। भाई ! हमारी तक़दीर में तो जूते ही बदे है मगर देते हैं तुम्हारे जैसे सभी बड़े-बड़े आदमियों को। दिल्ली जैसी जगह, यहाँ तो तमाम हिन्दुस्तान के लीडर भी आते हैं और दलिद्दर भी तशरीफ़ लाते हैं। तुम्हारी दुआ से सभी महरबान हैं। तुमने तो उनकी तक़रीर ही सुनी होगी—मुझे तो उनके चरण-छूने का भी मौक़ा नसीब हो चुका है यह काम ही ऐसा है रज्जन ! इस बिजनिस में खाकसारी और इनकिसारियत (विनम्रता) से ही काम चलता है। हम लोग तो अपनी रोटी कमाते हैं जूते के जोर से—क्यों कि हम बी. ए. थोड़े ही हैं। बुरा न मान जाना हां ! मेरी तो आदत ही बचपन से ऐसी है।

तुम्हारी भाभी तुम्हें देखने के लिए तरस रही हैं। बच्चे उछल रहे हैं कि चचा आयेंगे तो न जाने क्या-क्या लायेंगे।

जिसे तुम हमेशा 'नामाक़ूल' कहते रहे

तुम्हारा वही

दीनू.

× × ×

(२)

× × × खेड़ा (रामपुर)

ता० १-४-४२.

प्रिय दिनेश,

मुझे यहाँ, गाँव आये ४–५ दिन होगये। तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़ी मीठी चुटकी लेते हो यार!

खैर अब आगे की बात सुनो। पत्र जरा लम्बा है, कहीं पढ़ते–पढ़ते ऊब न जाना और अगर समय न हो तो रातको सोते समय पढ़ना मगर बिना पढ़े ही न रह जाना। इसमें मेरे जीवन की वह कहानी है जिसे पढ़कर तुम खुश हो जाओगे।

गाँव के भोले लोग मुझे स्टेशन पर 'रिसीव' करने के लिए आये थे। पिता जी भी इन सबके साथ आये थे। कई लोगों के हाथ में फूलों की मालाएँ थी और कुछ बच्चे केवल फूल ही लिये हुए थे। गाड़ी स्टेशन पर रुकी और मेरे उतरते ही खटाखट कई फूल मालाएँ मेरे गले में पड़ गईं। स्टेशन पर फूल बिखर गये। मुसाफिरों ने झाँक कर देखा और शायद मन ही मन उन्हें मेरे ऊपर जलन भी हुई। मैंने अँगरेजी 'एडीकेट' के साथ सब से हाथ मिलाया। लोग मुझे और मेरी वेष–भूषा को देखकर बड़े खुश थे। स्टेशन से ५ मील दूरी पर हमारा गाँव है न, बस वहीं जाना था। दूल्हा की तरह मुझे एक घोड़े पर बिठा दिया और लोग–बाग मुझे लेकर चल पड़े। आखिर इतने बड़े जमींदार का बेटा और उसने भी पास किया बी० ए०–खान्दान में कोई भी हिन्दी मिडिल से ज्यादा तो पढ़ा ही नहीं था। यह तो मुझे ही समझो कि मैंने

अब तक का सारा रिकार्ड तोड़ दिया। लेकिन इसका कारण भी तुम तो जानते ही हो, जमीन्दारों में जहालत किस दर्जे की होती है ? उसी के कारण हमारी जमीन्दारी समाप्ति पर थी। सुनोगे क़िस्सा ? बड़ा दिलचस्प है।

मेरे बाबाजी दो भाई थे। एक बाबा मर गये निः सन्तान और दूसरे बाबा का जो खान्दान चला उसमें मेरे पिता जी ताऊजी और मैं शेष था। बड़ी होने के कारण हमारी बूढ़ी दादी के हाथ में खजाने की ताली रहती थी। मेरी अपनी दादी मर चुकी थीं इसलिए वे मुझे बड़ा प्यार करती थीं और मैं भी उनको पाकर सब कुछ भूल जाता था। ताऊजी को शौक़ था सुरा और सुन्दरी का उन्हें चाहिए रुपया, परन्तु आवे कहाँ से ? दादी जी ने ताली अपने गले में डाल रक्खी थी-इसलिए खजाने तक हाथ पहुँचना बड़ा मुश्किल था। ताऊजी ने अपने कारिन्दा से मशवरा किया। बदज़ात ने कहा, जहर दे दो। बड़ी बूढ़ी तो हैं ही किसी को शक भी नहीं होगा और फिर बड़े होने के नाते खजाना आपके हाथ में आवेगा। रसोइये को बुलाकर सारी बातें समझाई गईं। बेचारा बामन का बेटा, हत्या करने से डरा या उसे दादी जी की अमूल्य सहायताओं और स्नेह ने रोका। जब दादी जी चौके में खाना खाने पहुँची तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

"क्या हुआ महाराज।" दादी ने पूछा.

"कुछ नहीं सरकार" आँसू पोंछते हुए महाराज ने कहा.

"कुछ बात तो हुई है वरना क्यों रोरहे हो ?"

"माफी दी जाय सरकार ! तो कहूँ"

"माफी है कहो।" और दादी जी सम्हल कर बैठ गईं।

महाराज ने सारी कहानी सुनादी। दादीजी सुनकर सन्न रह गईं। उन्होंने ताऊ जी को बुलाकर पूछा तो वे साफ मुकर गये।

"भला ऐसा भी कहीं हो सकता है अम्माँ ! यह बामन ही साला हरामजादेपन की बातें करता है। कारिन्दा को बुलाकर पूछलो न !"

"मेरा मतलब यह है बेटा!" दादी जी ने कहा:—"मैं तो आज मरी कल तीसरा दिन समझो। तुम्हें तालियाँ चाहिए तालियाँ लो। खजाना चाहिए खजाना लो। मैं क्या इसे छाती पर रख कर थोड़े ही ले जाऊँगी।"

"तुमतो बिल्कुल पागल होगई हो अम्माँ। कोई भी ऐसा कपूत होगा जो अपनी माँ को ही मार डालने की सोचेगा।"

ताऊजी जब तक समझा-बुझा ही रहे थे कि तबतक कारिन्दा भी आ धमका। उफ़ ! राजब का आदमी था वह। जनाब। वह ४२० की बातें सुनाई उसने कि बस। बेचारे रसोइये की सट्टी गुम होगई।

"ये सब इसी के करम हैं सरकार ! गोरा शूद्र और काला बामन दोनों ही खतरनाक होते हैं। आप इससे बचती रहिये।"

"क्यों महाराज ! यह सब क्या कह रहे हैं ?"

"क्या कह रहे हैं सरकार !"

"कहते हैं कि यह सब बातें महाराज की बनाई हुई हैं।"

"कौन-सी बातें ?"

"यही ज़हर दे देने वाली"

"होंगी सरकार !"

"लेकिन तुमने ही तो अभी-अभी मुझसे यह सब कहा है।"

"नहीं तो, कब कहा सरकार ! आपको ख़याल नहीं रहा होगा।"

"झूठे ! अभी-अभी तो कहा है-ऊपर से झूठ बोलता है ?" धमकाते हुए दादी जी ने उससे कहा।

"ज़रा सबर कीजिये सरकार ! जब इतने बड़े-बड़े आदमी झूठ बोल रहे हैं तो मेरी क्या बिसात है ? अगर मैं भी झूठ बोलने लगूँ तो क्या कोई ताज्जुब हो जायगा ?" व्यंग से ताना मारते हुये महाराज ने 'रिमार्क पास' करदिया। खैर ज्यों-त्यों करके उस दिन मामला टल गया।

एक सप्ताह बाद ही महाराज छुट्टी लेकर अपने घर गया और गया सो गया ही गया-फिर वह लौट कर नहीं आया। एक दिन अँधेरी रात में ताऊजी ने अपने सहायकों द्वारा दादी-जी पर हमला करदिया और उनका गला घोंट कर मार डाला। अक्लमन्दी ये की कि सामने ही मैदान में चिता बनाकर उनको

भस्मीभूत भी कर डाला। खबर लगी पुलिस को। दस दुश्मन दस दोस्त सभी के होते हैं। स्वयं कारिन्दा साहब फूट निकले। बस फिर क्या था—मुकदमा चला। बड़े-बड़े वकील और बैरिस्टर पैरवी के लिए बुलाये गये। हाईकोर्ट तक मामला चला। नीचे की अदालत से आजीवन काले पानी की सजा हुई परन्तु हाईकोर्ट से केवल दो वर्ष की सजा रह गई। इस तमाम मुकदमेबाजी में लग भग दो लाख रुपया खर्च हुआ और बारी-बारी से पूरी की पूरी जमीन्दारी समाप्त होगई। इसके कुछ ही दिनों बाद ताऊजी मर गये और साथ में हम लोगों को भी मार गये। अब हमारे बड़े जमीन्दार घराने के पास केवल मौरूसी जमीन बाक़ी थी। इसलिए तमाम आशाएँ मुझी पर केन्द्रित थीं।

इस प्रकार गाँव में कुछ दिन रहने के बाद मैं फिर शहर की ओर वापिस लौटा। नौकरी की तलाश में कई जगहों पर टक्करें मारीं। कहीं तीन रुपया रोज मिलते थे तो शराब के स्टोर का चार्ज लेना था और कहीं चार रुपये रोज की बात थी तो मशीन पर काम करना था। यों तो लड़ाई के जमाने में काम की कमी नहीं थी लेकिन यहाँ तो दिमाग में कुर्सी और मेज घुस रही थीं—यह काम कौन करता इसी बीच एक घटना हो गई।

मैं एक दफ्तर से बाहर निकल कर पास वाले पार्क की बैंच पर बैठ गया। जाने-अनजाने न जाने किस ध्यान में डूबा हुआ, कि मेरे पास आकर एक बालक ने मेरा ध्यान भंग

कर दिया।

"पालिस बाबूजी!"

मैं चौंक पड़ा। उसकी ओर पाँव बढ़ा दिया। पालिस करके उसने जूते मेरे पैरों में डाल दिये। मैंने उसे एक आना दे दिया और वह सलाम करके चल पड़ा। सहसा मुझे ध्यान आया और मैंने उसे आवाज दी।

"ए लड़के! यहाँ आना"

"जी" वह मेरे समीप आगया,

"तुम कहाँ रहते हो भाई?"

"पादरी टोले में"

"कितना कमा लेते हो दिनभर में?"

"क्या है बाबू जी! यही दो-डेढ़ रुपये रोज मिल जाते हैं।"

मेरे चेहरे पर एक मुस्कुराहट-सी आगई। बालक चला गया।

मैंने सोचा, मैं भी बी.ए. न होकर अगर पालिस करने वाला होता, कोई बढ़ई होता, कोई राज-मजदूर होता तो? स्वतन्त्रता से जीवन-यापन करता। आज मुझे तुम पर स्पर्द्धा है मित्र! जबतक मैंने बी.ए. किया तबतक तुमने कम से कम चार-छह हजार रुपये कमा लिए होंगे। दुनिया में पैसे की ही क़दर होती है दीनू! आज यह मेरी समझ में आया है।

मैं तुम्हारी दूकान पर तो अब नहीं आसकता क्योंकि

पासमें इतने पैसे नहीं है, हाँ तुम अगर चाहो तो पार्सल से जूते भेजसकते हो- दाम जुड़ जाने पर भेज दूंगा। बच्चों को प्यार।

तुम्हारा
रञ्जन

(४)

× × × दिल्ली
ता० ७-४-४३.

प्रियवर राजेन्द्र,

तुम्हारा दिलचस्प खत मिला। तुम्हारी भाभी को जब सुनाया तो वह हँसी भी खूब और नाराज भी काफी हुई। आखिर यह कौनसी अकलमन्दी है कि तुम यहाँ नहीं चले आते। दुकान पर बैठो। अपनी दूकानदारी देखो और समझो, मुझे भी कुछ आराम मिलेगा। तुम्हारा भी आमदनी का जरिया निकल आवेगा। यह तो मैं जानता हूँ कि तुम जिद्दी हमेशा के हो। जो बात दिलमें जमगई सो जमगई। फिर भी वक्त बुरा है। कुछ न कुछ करो। बिना करे काम नहीं चलेगा। माफ करना बहुत थोड़ा-सा इसलिए लिख रहा हूँ कि आज भारत के वायसराय और लेडी वायसराय तशरीफ लारहीं हैं- उनके लिए खास तौर पर 'स्पेशल शूज' तय्यार कराये हैं। पसन्द आगये तो काफी नाम हो जायगा। तुम्हारे लिए पार्सल से एक जोड़ी रवाना कर रहा हूँ। पैसे-वैसे की बात लिखकर

शर्मिन्दा मत किया करो।

बच्चे नमस्ते कहते हैं।

तुम्हारा ही

दीनू।

(५)

× × × दिल्ली

ता० २६-५-४३

प्रियवर राजेन्द्र,

मेरा पहला खत और पार्सल तुम्हें मिल ही गये होंगे लेकिन जवाब नदारद। आखिर इतनी बेरुखाई क्यों?

हाँ जनाब आजके अखबार में एक खबर बड़ी मजेदार पढ़ी है:—"एप्रिल १६। स्थानीय तांगे वालों ने पिछले चार दिनों से हड़ताल कर रखी है। उनकी मांगें हैं कि चुंगी की ओर से जानवरों को पानी का इन्तजाम होना चाहिए और तांगे वालों के चालान बन्द करदिये जायँ। एक सभा में इसी आशय का प्रस्ताव भी पास हुआ, जिसके सभापति श्री राजेन्द्र-प्रसाद बी.ए. ने अपने जोशीले भाषण के द्वारा पिछड़े और गरीब लोगों में नया जीवन डाल दिया है। हड़ताल तब तक जारी रहेगी जबतक उनकी मांगें स्वीकार नहीं करली जावेंगी"

यह क्या मामला है? क्या अब नेतागिरी का शौक लग गया है? बच्चा जी कहीं जेल नहीं देखनी पड़े। होशियारी से काम करना।

(६)

× × × ×

ता० ५. ६-४२.

प्रिय दिनेश,

तुम्हारे दोनों पत्र और पार्सल ठीक समय से मिल गये थे परन्तु इतना व्यस्त था कि उत्तर नहीं दे सका। तुमने जो कुछ पढ़ा है ठीक है। नेतागीरी का शौक़ नहीं लगा है बल्कि रोटी कमाने का रास्ता दीख पड़ा है। आदमी को ज़िन्दा रहने के लिए संघर्ष तो करना ही होता है और यह भी एक ऐसा ही संघर्ष है। यह है चुंगी जो खटमल की तरह हमारा खून चूस रही है और फ़ायदे के नाम अँगूठा दिखा देती है।

अच्छा अब पूरी बात सुनो। तुमको पत्र लिखने के बाद मैं कई जगह मारा-मारा फिरा लेकिन सभी जगह दफ्तरों की क्लर्की के सिवाय और कोई सम्मान-प्राप्त होते नहीं देखा। मैंने सोचा यह मेरे जैसे बी. ए. पास आदमी के लिये अपमान की बात है। इससे अपना स्वतन्त्र कार्य करो। मैंने पिता जी को लिखकर एक हज़ार रुपये मंगाये और एक ताँगा घोड़ा खरीद लिया। स्टेन्ड पर जाकर जिस समय खड़ा हुआ, बे-पढ़े-लिखे तांगे वाले मुस्कुराये। दो एक ने फबती कसी परन्तु कुछ ही दिनों में जब उन्हें यह मालूम हुआ कि राजेन्द्र बाबू बी. ए. हैं तो वे मेरे चारों ओर लिपट गए। अपने-अपने दुख-सुख की बातें करने कहने लगे। मैंने कहा, पागलो संग-

ठित हो जाओ और कुछ ही दिनों बाद 'ताँगा-इक्का एसोशियेशन' क़ायम होगई। मैं उसका सभापति हूँ—तुम्हारे शब्दों में "अन्धों में काना राजा"-भाई! पिछली हड़ताल बड़ी कामयाबी के साथ समाप्त हुई। हमारी सभी शर्तें मानली गईं। हड़ताल के दिनों का नज़ारा देखने के क़ाबिल था। बड़े-बड़े चश्मे वाले बाबू जी साहब कंधों पर बिस्तरे रखे चले आरहे थे। देवियाँ और देवता सन्दूकों के कोने पकड़े बढ़े जारहे हैं। बेचारे थक जाते तो सन्दूक को ज़मीन पर रख देते और थोड़ी देर सुस्ता लेते। गुलाबी गालों का पाउडर पसीने में घुल-मिल कर लम्बी-लम्बी स्मृतियों की रेखाएं बनकर बहा चला जारहा था। धूप की तेजी में लिपस्टिक का रङ्ग बदरङ्ग होरहा था। मैंने देखा दीनू! "ओय, ओय, ताँगा-ताँगा" कह कर अपनी बाबू साहबियत की धाक दिखाने वाले ये औरत-मर्द आज कैसे भीगी बिल्ली होरहे हैं। काश! यही पढ़े लिखे लोग अपढ़ ताँगे वालों को 'भाई' कह कर पुकारें तो? क्या बदले में ताँगे वाले के अन्तर से 'भाई' समझने वाले के लिए प्रेम से डूबा हुआ 'जी सरकार' शब्द नहीं निकलेगा?

ओह! मैं कहाँ बह गया। हाँ तो मेरे पास इतनी सवारी गिरती कि मुझे सम्हालना मुश्किल होजाता। अंग्रेजी जानने के कारण विदेशी-परदेशी मेरे ही ताँगे में बैठते "रैडी फॉर योर सर्विस सर" कहते सुनकर फौरन ही अपटू डेट लोग मेरी ओर बढ़ते और मुँह माँगे दाम देकर मेरे ही ताँगे में बैठना पसन्द

करते थे। एक माह में इतनी आमदनी हुई कि बस। पिताजी के हजार रुपये लौटा दिये और दूसरा ताँगा बनाकर उसे नौकर के हवाले कर दिया। बीस-बाइस रुपया रोज की मजदूरी का औसत फैलता है। मैं बहुत खुश हूँ दीनू! आज मैंने ताँगा नहीं जाता क्यों कि मैं बहुत खुश जो हूँ न? मेरी और तुम्हारी खुशी में थोड़ा-सा ही अन्तर है। तुम्हें याद है तुम्हारे यहाँ एक दिन भारत के वायसराय आये थे और मेरे यहाँ जानते हो कौन आया था? -एक भिखारी।

बड़ी भीड़ थी स्टेशन पर। तिल रखने की जगह नहीं थी। सैकड़ों बग्घियाँ, तांगे, मोटरें वहीं खड़ी थीं-परन्तु मेरा ताँगा, जैसा कि रिवाज था, सबसे आगे स्टेशन के पास ही खड़ा था। आज भारत के हृदय-सम्राट गाँधी जी आने वाले थे। ट्रेन खर-खर करके स्टेशन के बीच में आकर खड़ी होगई। लोगों ने जय-जय कार के नारों से आसमान गुँजा दिया। हटो-बचो, की आवाजों में बापूजी बाहर आये। मैंने ताँगे पर बैठे ही बैठे दर्शन किये और समीप आते ही कहा :-"पधारो मारा भारत नो आजाद करावना। बापूजी-थारों स्वागत छे" उन्होंने एक नजर मेरी ओर डाली वे मुस्कुराये?

"तमे ताँगा वाणा छो" उन्होंने विनोदी स्वरमें पूछा!

"खरोखर बापूजी! तांगावाणा अने साथ मां बेच्यूलर आफ आर्ट्स"

"बहु सुन्दर छे। तमे बी. ए. होवानी पछी कोई नौकरी

नहीं करी ? ”

“आज़ादी मने घणीं सुन्दर लागे छे—नौकरी पण गुलामी छे, बापूजी ।”

वे मेरे ताँगे में बैठ गये। मेरा तांगा, मेरा घोड़ा और मैं गर्व से आगे बढ़े। बड़ी-बड़ी मोटरें झक मारती रह गईं। घोड़ा-गाड़ियों को खाली लौटना पड़ा। मेरा मन प्रसन्नता से भरगया था क्योंकि मैंने स्वतन्त्र व्यवसाय करके नौकरी के लिए ही बी. ए. पास करके जो पाप किया था आज उसका प्रायश्चित पूरा होगया था। बापूजी ने उतरते समय आशीर्वाद देते हुए कहा—“देश के नौजवानों की मानसिक गुलामी तभी दूर हो सकती है जब वे नौकरी के लिए विद्या न पढ़कर विद्या पढ़ने के लिए विद्या पढ़ें।”

क्यों दीनू ! मेरा प्रायश्चित पूरा होगया या नहीं ?

तुम्हारा ही

रंजन.

(७)

× × × दिल्ली

ता० ८-६-४३

प्रियवर राजेन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला, एक दिन मैंने तुम्हें तार से बधाई दी थी। वह बधाई दूसरे के हाथों से लिखकर तुम्हारे पास तक पहुँची होगी इसीलिए फिरसे तार नहीं दिया। इस

बार मैं हृदय से बधाई देता हूँ।

भाई ! तुम जीते मैं हारा लेकिन इस हार में भी मुझे अपनापन झलक रहा है। भगवान करे तुम्हारा प्रायश्चित दूसरों के लिए मार्ग-दर्शक बने।

स्नेही

दीनू

———※———

मुद्रक :—————— प्रेस

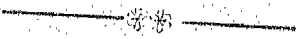

× × ×

नीलाम्बर का घराना कोई गरीब नहीं था परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे लोग रईस थे। मध्य-श्रेणी के लोग जैसे होते हैं, उसका परिवार सब कुछ मिला कर वैसा ही था। बड़ी लगन, बड़ी साधना और बड़ी तपस्या के साथ पिता ने नीलाम्बर को दसवाँ दर्जा पास कराया था। "भाग्य फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम" संभवतः नीलाम्बर का भाग्योदय हो रहा था तभी तो वह डाक्टरी के चुनाव में फर्स्ट आया था और आज कल मेडिकल-कालेज की तीसरी वर्ष में शिक्षा पा रहा था। घर वालों को बड़ी-बड़ी आशाएँ थी—परन्तु नीलाम्बर जैसे ही चौथी-वर्ष में आया कि उसके पिता का देहान्त हो गया। बेचारा नौजवान सहसा निराश्रय हो गया। मानिये, सिर मुड़ाते ही ओले पड़ गये। इधर घर की चिन्ता उधर कालेज की पढ़ाई। निरीहा मा ने धीरज के साथ आगामी एक वर्ष जिस प्रकार से काटा, नीलाम्बर उसे आज भी नहीं भूल पाता है।

नीहारिका और नीलाम्बर गाँव की पाठशाला में साथ ही साथ पढ़े हैं और जब उनके दिन प्रेम की पाठशाला में पढ़ने के थे, उनको ताकीद करदी गई कि वे एक दूसरे से न मिलें। नीलाम्बर इसका कारण समझता था। स्त्री और पुरुष के बीच में प्रेम की एक नदी लहराये और वे दोनों उस सरिता में आकण्ठ न डूबें—यह कभी संभव नहीं है।

पास वाले बाग से टहल कर लौट रही थी नीहारिका—सहसा उसे किसी ने चौंका दिया। उसने डर कर इधर उधर देखा तो पाया कि नीलाम्बर उसके सामने खड़ा है। नीहारिका उसे देखकर प्रसन्न तो हुई परन्तु फौरन ही बनावटी गुस्से में भरकर बोल पड़ी—

"अब तो तुमने अना भी छोड़ दिया है नील्!"

"क्या करूँ नीहारिका! इधर कालेज की पढ़ाई उधर राय-साहब का डर"

"क्यों डरना कैसा?"

"बड़े आदमी हैं भाई! पिता जी हैं तुम्हारे। इस पर भी उनका हुक्म है कि अब नीहारिका और नीलाम्बर परस्पर एकान्त में न मिला करें। क्या जाने उन्हें कहीं क्रोध आगया तो?"

"ओह! मालूम हुआ इतने डरपोक हो? क्योंजी जब इतना डर लगता है तो मरीज़ों का पेट कैसे फाड़ते होगे?"

"अरे तो पेट फाड़ना क्या कोई बहादुरी है? खच से चाकू पेट में घुसेड़ा कि बस"

"तो यहीं तक आते में डर लगता है? और मानलो कदाचित् मैं बीमार ही पड़ जाऊँ तो? तो शायद तुम डरके मारे मुझे देखने भी नहीं आओगे। चाहे फिर मैं मर ही क्यों न जाऊँ"

"छिः छिः एसी बात नहीं कहते नीहारिका! भगवान न

करे तुम कहीं बीमार पड़ो। अगर जरूरत हुई तो मैं अपना खून देकर भी बचा लूँगा-हाँ, समझीं! अब मैं पूरा-पूरा डाक्टर होगया हूँ।"

"तो क्या डाक्टर के हाथ से मरीज़ मरते नहीं?"

"लेकिन मैं तो मरीज़-मार डाक्टर नहीं बनने का।"

"जी नहीं, आप तो तन्दुरुस्त-मार डाक्टर बनेंगे।"

"तुम्हारी बातें आज भी वैसी ही हैं नीहारिका! इन्हीं बातों की वजह से तो मैं तुम्हें हर समय याद करता रहता हूँ।"

"अच्छा जी! शुक्रिया! मेरा ख़याल आपके दिल में बना हुआ है यही क्या कम है।"

तानां कस दिया निहारिका ने। मधुमक्खी की तरह गुनगुनाती, भनभनाती, मचलती और इठलाती हुई वह फूल चुनने लगी।

"तुम बड़ी चंचल हो नीहारिका! कभी-कभी ऐसा मन होता है तुम्हें गोद में उठाकर भाग जाऊँ।"

"अच्छा? हिम्मत है इतनी?"

"क्यों नहीं है नीहारिका! तुम नहीं देखतीं, अमियाँ गदरा गई हैं, कोयल के गले से स्वर फूट निकले हैं। मीठी-मीठी हवा में सनसनाहट पैदा होगई है। फिर भी हम लोग न जाने कब तक अलग-अलग रहेंगे। नीहारिका! क्या हमारे दिल के अरमान, हमारी जवानी की उमंगें यों ही जल-भुन कर रह-जायँगी? बोलो रानी बोलो।"

"तुम कितने सीधे हो नीलाम्बर! हमेशा की तरह से

आजभी तुम में उतना ही भोलापन और बचपन है। नीलूबाबू! किसी प्रेयसी ने आज तक 'हाँ' कह कर स्वीकृति दी है। उसको 'न' में ही 'हाँ' छिपी रहती है। लेकिन मैं क्या करूँ नीलाम्बर! नदी की तरह सीमाएँ तोड़कर मैं तुम में समाजाना चाहती हूँ परन्तु मेरे प्रवाह के सामने एक बाँध जो खड़ा कर दिया गया है?" नीहारिका के स्वर में कुछ भारी पन–सा था।

"मैं उस बाँध को नष्ट कर दूँगा नीहारिका!" नीलाम्बर कुछ उत्तेजित–सा होता हुआ बोला:–"तुम स्वच्छन्द होकर मेरे हृदय–सागर में घुल–मिल जाओ। हमारे प्रेम की भावनाएँ कल्लोल–हिल्लोल की तरह उसमें तूफ़ान उठाती रहें। हम तुम दोनों ही उसमें डूब जाएँ।"

"परन्तु उस बाँध को तोड़ सकोगे नीलाम्बर! पिताजी के सामने मुँह खोलकर कह सकोगे कि तुम नीहारिका से प्रेम करते हो?"

"सचाई हर पहलू से सचाई है रानी! मैं सब कुछ साफ–साफ कह दूँगा"

"इतना साहस है?"

"कल देख ही जो लेना"

"मेरा बोझा उठा सकोगे?"

"तुम तो फूल के समान हलकी हो निहारिका!"

"नारी के हाथ गले में पड़ने के बाद वह बहुत भारी हो जाती है नीलू!"

"सच मुच?"

"और क्या झूठ ?"

"तो जरा मेरे गले में हाथ डाल कर दिखाओ तो सही ! देखूँ तुम कितनी भारी हो ?"

सुन्दरी नीहारिका ने नीलाम्बर के गले में मृणाल जैसी दोनों भुजाएं पिरो दीं। उसने युवक-सुलभ चंचलता से नीहारिका को हृदय से लगाकर ऊपर को उठा लिया।

"यदि किसी ने देख लिया तो"

"संसार देखे नीहारिका ! मैं सब को दिखा देना चाहता हूँ और जोर-जोर से सुना देना चाहता हूँ कि नीहारिका मेरी है और मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।"

—कोई देखे न देखे और कोई सुने या न सुने परन्तु हल्के-हल्के अन्धकार में टहल कर लौटने वाले नीहारिका के पिता रायसाहब नगेन्द्रनाथ जी से यह लीला छिप न सकी। उन्होंने देखा, सुना और दबे पैरों ही घर वापस लौट आये। दोनों प्रणयी 'गहरे चुम्बन' की अमिट-छाप लिये हुए इधर-उधर चले गये।

× × ×

"मैंने अपनी आँख से देखा है नीहारिका की मा ! क्या तुम मुझ पर भी भरोसा नहीं कर सकती हो ? अजीब औरत हो तुम।"

"मेरी समझ में नहीं आ रहा है आखिर उनमें ऐसा स्नेह जुड़ कैसे गया ?"

"लो भाई, यह भी एक ही रही" इतना कह कर रायसाहब ठठाकर बड़े जोरों से हँस पड़े:—"तुम भी कहोगी हमें भी चरखा ले दो। अच्छा बताओ हमारी-तुम्हारी शादी कैसे हो गई ?

"कैसे हो गई ?"

"आखिर हम दोनों में भी तो प्रेम-चर्चा चली थी ? तुम्हें याद है वह दिन जब मेरे मामा के लड़के की शादी थी और तुम कन्या-पक्ष की ओर से उन लड़कों की खातिरदारी कर रही थीं जो 'कुँवर कलेऊ' में गये हुये थे। तुम्हें हाथ जोड़ कर चलते समय नमस्ते की तो तुम्हारे गाल लज्जा से लाल हो गये थे-क्यों ?"

"और उसके बाद ?"

"जानो तुम्हें कुछ याद ही नहीं है-अपनी कथा सुनने में बड़ा मजा आ रहा होगा, क्यों ? फिर उसी रात को जब मैं 'बढ़हार' में भोजन करने आया था तो तुमने इशारे से मुझे बुलाया और मेरा नाम-पता पूछा, अपना बताया। इसके बाद जो चिट्ठी-पत्री की बाढ़ लगी तो भेद-राज फूट गया और हम दोनों एक सूत्र में बँध गये।"

"यह बातें बहुत पुरानी हैं। वह जमाने कुछ और ही थे" नीहारिका की मा ने कुछ मधुरता में डूबी हुई वाणी से कहा।

"जमाना हमेशा बदला करता है दिनेश की

था ! कभी हमारे दिन थे आज लड़का लड़की के दिन हैं। और मेरी राय में नीलाम्बर भी कुछ बुरा लड़का नहीं है।"

"नहीं, सो तो ठीक है। शील भी है और स्वभाव भी लेकिन ... लेकिन घर तो... "

"हाँ, घर तो कमजोर है माना, लेकिन इन्सान की तक़दीर पत्ते के नीचे होती है। कौन जाने कब क्या हो ?"

"जो तुम्हारी मर्जी"

"तो मैं जरा कसौटी लगाकर देखता हूँ"

"देख लीजिये।"

नीहारिका के पिता और माता ने खोज-बीन शुरू करदी और देखा कि यदि नीहारिका इस प्रेम-बन्धन में बँधकर सुखी हो सकती है तो उसे सुखी बनाने के लिए यह भी कर देना चाहिए।

× × ×

दूसरे दिन नीलाम्बर राय साहब के बालाखाने में हाजिर था, रायसाहब गरम मालूम हो रहे थे।

"हमने सब कुछ अपनी आँख से देखा है नीलाम्बर !"

"मैं किस मुँह से कहूँ कि आप सच नहीं कह रहे हैं।"

इस पर भी तुम्हारा यह गुस्ताखाना जवाब ? अपने कुसूर की माफ़ी माँगने के बदले तुम ज़िद किये चले जा रहे हो ?"

"आप मेरे पिता के समान हैं रायसाहब" नीलाम्बर ने कहा:-"मैं आप से कोई बात नहीं छिपाना चाहता। मैं

दुनिया में आपको जितनी इज्जत की नजर से देखता हूँ उतना और किसी को नहीं। लेकिन मैं आपसे कुछ भी दुराव नहीं रखना चाहता"

"नीलाम्बर! तुम जानते हो मुझे?"

"आस-पास में ऐसा कौन प्राणी है जो आपको नहीं जानता, आपके प्रभाव को नहीं जानता। आपके एक इशारे पर मुझे जेलखाने भेजा जा सकता है, दूसरे इशारे पर मुझे संसार का सब से दुखी प्राणी बनाया जा सकता है।"

"इतना जानते हुए भी तुम्हें अपनी करनी पर अफ़सोस नहीं होता?"

"नहीं रायसाहब नहीं! मान लीजिए मेरी जगह आपका पुत्र दिनेश ही होता तो?"

"तो तुम जानते हो मैं क्या करता?"

"शायद आप इतने नाराज़ नहीं होते"

"नाराज नहीं होता? नीलाम्बर! मैं उसके दो टुकड़े कर देता!"

"तो आप मेरे भी दो टुकड़े कर दीजिये पिताजी! आप मेरे धर्म-पिता हैं" नीलाम्बर ने इतना कहकर रायसाहब के पैर पकड़ लिए:-"संसार मुझे अपराधी और अकृतज्ञ कहे परन्तु मैं आपकी नजरों में कपूत नहीं बनना चाहता। इसी तलवार से जो आपके सिर पर लटक रही है मेरे दो टुकड़े कर दीजिये"

नीलाम्बर की आंखों में आंसू की दो बूँदें छल-छलाती देखकर रायसाहब का करुणा पूरित हृदय पसीज गया। उन्होंने एक दम नीलाम्बर को अपने हृदय से लगा लिया।

"नहीं मेरे बच्चे! मैं तुम्हें जीवन-दान दूंगा। तुम सच्चे डाक्टर बनो। रायसाहब से जीवन पाकर दुनिया को जीवन प्रदान करो। नीहारिका तुम्हारी होगी"

विस्फारित नेत्रों से नीलाम्बर देखता का देखता रह गया। क्या यह वही रायसाहब हैं जो अभी-अभी नीलाम्बर पर इस तरह बिगड़ रहे थे? आखिर इस परिवर्तन का कारण? वह कुछ भी समझ नहीं पाया।

"मेरी समझ में नहीं आता रायसाहब। क्या पिता-पुत्र भी आपस में आँख मिचौनी खेलते हैं?"

"इसका नाम दुनिया है नीलाम्बर। यहाँ पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, भाई-बहिन सब एक दूसरे से आँख मिचौनी खेलते हैं। अब तुम जाकर शादी की तय्यारी करो"

कुछ ही दिनों में बड़ी धूम धाम से नीहारिका और नीलाम्बर परस्पर विवाह-सूत्र में बँधकर एक हो गये।

× × ×

समय की बात बड़ी होती है। राजा निर्धन हो जाता है और निर्धन राजा हो जाता है। भाग्य-देवता अपना पांसा कब पलट देता है यह कोई भी नहीं जानता। डाक्टर होकर नीलाम्बर ने एक मामूली-सी जगह 'प्रेक्टिस' शुरू करदी। यश मानों उसके घर के द्वार पर धरना देकर बैठ गया था और लक्ष्मी

तो संभवतः नीहारिका की रुन-झुन के साथ-साथ नाचती फिरती थी। काम धीरे-धीरे बढ़ा और नाम भी हवा की तरह सारे भारतवर्ष में फैल गया। नीलाम्बर की गणना चोटी के 'सर्जनों' में होने लगी। उसने आराम बाग में कई मकान ले लिये और उन सब में दूर-दूर के मरीज आकर ठहरने लगे। उसका 'आपरेशन-थियेटर' बड़े-बड़े अस्पतालों को मात करता था। सारा स्थान मक्खन की तरह श्वेत और साफ था। बीच में एक मेज पड़ी हुई थी, जिस पर रबर का शीट बिछा हुआ था। यह मेज चारों ओर से निकल घूमती थी और पहियों के बल पर इधर-उधर चारों ओर घूम सकती थी। सिर के ऊपर एक बड़ा-सा लैम्प था जो आपरेशन के समय रोशनी डाला करता था—तारीफ की बात यह थी कि लैम्प की रोशनी में काम करते समय डाक्टर के शरीर की परछाईं मरीज पर नहीं पड़ती थी। इसी स्थान में हाथ धोने के लिए एक छोटा-सा नल और कई सफेद तौलिये पड़े हुए थे। बाहर निकल कर देखा जाय तो एकाएक देखने वाला चौंक पड़े। एक कमरे में शीशों की अलमारियों में विभिन्न प्रकार की कैंचियाँ रखी हुई हैं—दूसरे में छुरियाँ, तीसरे में चिमटियाँ और इसी प्रकार ढेर के ढेर औजार अन्यान्य कमरों में भरे पड़े थे। इनकी संख्या सैकड़ों नहीं वरन हजारों समझिये।

आज भी, यदि आप उस ओर से होकर निकल पड़ें तो आप देखेंगे कि एक सफेद बालों वाला वियोगी डाक्टर अपने

कमरे में 'रबर–बैड' पर लेटा हुआ 'ब्लैक एण्ड व्हाइट' की सिगरेट पी रहा है। उसके सहकारी व्यस्त हैं। वह दिन–रात मरीज़ों को देखने में लगा रहता हैं। लोग उससे बड़ी–बड़ी खुशियाँ प्राप्त करते है, उनकी आशा पूरी होती है नीलाम्बर से, परन्तु वह नीले–आकाश की तरह विशाल और सदैव मौन रह रहा है।

तो, नीहारिका इस प्रकार से प्रचुर–धन और यश की अधिकारिणी बनी। उसके दिन फिरे और भाग्य भी फिरा। नीलाम्बर जब आपरेशन करके लौटता तो औत्सुक्यता–पूर्ण स्वर में नीहारिका पूछती ?

"सफल हुआ ?"

"हाँ प्रिये" और नीलाम्बर के मुख मण्डल पर हल्की–सी मुस्कुराहट की रेखा नाच उठती।

"भगवान करे तुम युग–युग तक इसी प्रकार सन्सार को जीवन–दान देते रहो"

"यह सब रायसाहब का आशीर्वाद है नीहारिका। आज–तक कोई मरीज़ यहाँ से अपना जीवन खोकर नहीं निकला है।"

"तुम्हारे हाथ से प्रभु ने जीवन–दान का विधान ही निश्चित किया है।"

और इतनी बातें करते–करते ही मेज पर खाना चुन–जाता। दोनों प्राणी साथ बैठ कर भोजन करते। हँसते–हँसाते

और बचपन के जीवन की चर्चा करते हुए न जाने क्या-क्या सोच जाते।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। इसी बीच एक दिन नीहारिका ने एक सुन्दर पुत्री को जन्म दिया। कन्या थी गुलाब के फूल जैसी कोमल। रङ्ग बिल्कुल साफ़। चेहरा मोहरा सब बिल्कुल डाक्टर नीलाम्बर जैसा। दम्पति कन्या-रत्न को पाकर निहाल हो उठे। उसका नाम रखा गया—कमला।

लोग देखते और सुनते थे, साथ ही डाक्टर के सुख पर ईर्षा भी करते थे।

× × ×

"यहाँ कुछ मीठा-मीठा दर्द-सा होता है" नीहारिका ने अपना पेट दिखलाते हुए डाक्टर से कहा।

"अच्छा!"

"हाँ, जब से कमला हुई है उसके कुछ ही महीनों बाद से"

"अच्छा, एक्सरे कराकर देख लेंगे।" नीलाम्बर ने कुछ चिन्तित भाव से कहा। शाम को एक्सरे होगया और डाक्टर ने दूसरे दिन अच्छी तरह परीक्षा करके अपना निर्णय सुना दिया कि नीहारिका को 'एपेन्डिसाइटिस' होगया है। तुरन्त आपरेशन किया जायगा। नीहारिका ने सुना तो डरी। न जाने क्या होगा! परन्तु डाक्टर ने बहुत धीरज दिलाया और एक दिन अपने हाथों से अपनी प्रियतमा का पेट चीर दिया।

आपरेशन में, यों तो कई घन्टे लगे क्योंकि डाक्टर ही नहीं सारे के सारे सहकारी भी विशेष दिलचस्पी से काम कर रहे थे, फिर भी डाक्टर का मन नहीं भरा। वह चाहता था कि इस मौक़े पर उसकी कला पूरी तरह से परिश्रम का वरदान माँगे। अस्तु आपरेशन सफल हुआ और टाँके भर दिये गये।

परन्तु नीहारिका के पेट का दर्द नहीं गया। डाक्टर की समझ में नहीं आता था कि ऐसा क्यों हुआ। 'एपेन्डिसाइटिस' तो ठीक होगई थी परन्तु मालूम होता है यह कोई दूसरा रोग खड़ा हो गया। फिर से एक्सरे द्वारा' फोटो लिया गया। उफ़! डाक्टर बैठे से उठकर खड़ा हो गया। अरे! यह क्या हुआ? यह तो एक छोटी-सी कैंची नीहारिका के पेट में बन्द होगई? उसकी तन्मयता ने जो सतर्कता का बहिष्कार किया यह उसी का परिणाम निकला।

दूसरी बार फिर नीहारिका को अपने हाथ से नीलाम्बर ने आपरेशन की मेज़ पर लिटा दिया।

"नीलूबाबू!" नीहारिका ने प्यार भरे मृदु स्वर में कहा, "घबराओ मत नीहारिका।"

नीहारिका ने एक सन्तोष की साँस ली—एक गहरी नज़र नीलाम्बर पर डाली और फिर औषधि के प्रभाव से संज्ञा-शून्य होगई। डाक्टर ने चटपट आपरेशन करके आँतों में फँसी हुई कैंची को बाहर कर दिया परन्तु वह जिस जगह चिपकी रह गई थी वह स्थान सड़ गया था। दूसरे अर्थों में आँतों का एक टुकड़ा

गल गया था। रक्त का प्रवाह रुक न सका। और नीहारिका की जीवन लीला समाप्त होगई।

"नीहारिका! नीहारिका! रानी मेरी! यह क्या हुआ? मैंने हजारों मरीजों को अपने हाथ से जीवन-दान दिया लेकिन तुमको-अपनी देवी को जीवन-दान नहीं देसका।" नहीं देसका, नहीं देसका-नीहारिका!"

डाक्टर की आँखों से आँसू की झड़ी बँध गई। वह रोया और अन्तिम बार रोया क्योंकि लोगों का कहना है कि नीलाम्बर को उसके बाद फिर किसी ने रोते हुए नहीं देखा।

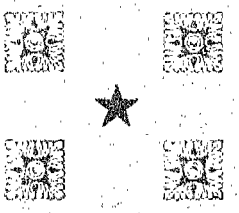

—और सरला ने अपने सधे हुए स्वरों में, पियानो पर गाना आरम्भ कर दिया। सुहानी ऋतु, प्यारा-प्यारा समाँ और इन सबके साथ में करुण-स्वर लहरी।

"बोलो, प्राण क्यों चले ?
क्यों वियोग ले चले, छोड़ घर बार क्यों चले ?
लौट नहीं पाते हैं झरने,
लौट नहीं पाती हैं नदियाँ।
क्या न लौट आओगे पंथी !
लौट न पाती बीती सदियाँ॥
तुम न रूठते, किन्तु किये अभिमान क्यों चले ?"

सरला— कोमल कन्या, सत्रह-अठारह वर्षीय नवयौवना। प्रफुल्ल मुख कमल, गोरी गोरी सुन्दर भुजाएँ, झीनी-झीनी साड़ी के अन्दर विहार करने वाली कुँचित केश-राशि, चन्द्रमा के समान अमृत से धुला हुआ मुखड़ा, संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि वह सुन्दरता का सार थी। जो भी उसे एक बार देख लेता था बलिहार होजाता। लेकिन निर्धनता ने उसके तमाम गुणों पर परदा डाल रखा था। उसके पिता एक बड़े जमीन्दार थे लेकिन समय-चक्र में पड़ कर सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो चुका था। न आज पिताजी थे और न उनकी समृता ही शेष थी।

"सरला ! सरला !" पास वाले एक कमरे से आवाज आई।

"जी आई जीजा जी।"

"एक गिलास पानी लेती आना"

दूसरे ही क्षण सुकुमार हाथों में एक गिलास पानी लिए हुए सरला विज्ञानशङ्कर के सामने खड़ी हुई थी। उसके लज्जालु-नेत्रों ने देखा, आज तो जीजा जी के नेत्रों में कुछ चमक-सा रहा है। किसी अप्रत्याशित छाया ने उनके हृदय पर अधिकार कर रखा है। वे पानी पीते जाते हैं और काँच के गिलास में से तिरछी नजरों के द्वारा सरला को भी देखते जाते हैं।

विज्ञानशङ्कर ने इस अधखिली कली को देखा और वे एक बारगी चंचल हो उठे। उनकी सात्विकता का आसन यकायक डोल गया। उन्होंने ललचाई हुई नजरों से सरला के अस्पष्ट यौवन की रेखाओं को देखा और एक लम्बी साँस खींच कर खाली गिलास वापस कर दिया। वह चली गई।

विज्ञानशंकर बड़ी देर तक उसकी राह देखते रहे—शायद वह फिर लौट कर आवे, पान देने के लिए। लेकिन सरला को तो लौटना था ही नहीं इसलिए वह नहीं लौटी। विज्ञानशङ्कर बड़ी देर तक इधर से उधर और उधर से इधर कमरे में चक्कर काटते रहे। कभी कनखियों से पास वाले कमरे की ओर देख लिया करते। प्रत्येक क्षण महसूस करते किसी के पैरों की आवाज आने वाली है, परन्तु थोड़ी ही देर में उन्हें मालूम होजाता कि यह उनका कोरा भ्रम है। सरला को फिर से पुका-

रने के लिए कई बहाने सोचे और सोचते-सोचते वे इतने तन्मय होगए कि एक बारगी पुकार ही उठे:—" सरला! सरला "

"जी" सरला ने कमरे में आकर पूछा:—"क्या हुआ जीजाजी! "

"कुछ नहीं-कुछ नहीं " कुछ-कुछ घबराते-से विज्ञानशंकर बोले "तुम्हारी बहिन ने तुम्हारे लिए एक चिट्ठी दी थी-वह तुम्हें देना ही भूल गया था "

"लीजिये पान खाइये, उसके बाद चिट्ठी दे दीजियेगा " पान की तश्तरी सरला ने आगे बढ़ाते हुए कहा:—" जब आपकी याद दाश्त इतनी कमजोर है तो मरीजों को कैसे दवा देते होंगे जीजाजी। "

"अरे नहीं भाई! बात यह नही है। तुम्हारे सामने मेरी सिट्टी गुम हो ही जाती है "

"अच्छा अब चिट्ठी लाइये न। "

"हाँ हाँ अभी लो "

विज्ञानशंकर ने कोट-पेन्ट और क़मीज सभी की जेबें खोज डाली मगर चिट्ठी नहीं मिली।

"पता नहीं चलता चिट्ठी क्या हुई। शायद अटैची में न हो। मैं उसे तलाश कर रखूंगा सरला! शाम को खाने के समय...हाँ...हाँ "

और कुछ हक्के-बक्के से विज्ञानशंकर कमरे से बाहर

होगए ।

× × ×

क्षमा कीजिए, जब से हम लोग शिक्षित होने का दावा करने लगे हैं तभी से कामुकता और व्यभिचार की प्रवृत्ति हममें बढ़ने लगी है। वैदिक काल में भी परदा नहीं था, स्त्रियाँ तब भी स्वतन्त्र थीं और उस युग में भी पुरुष थे परन्तु तब 'सेक्स' का प्रश्न था या नहीं और "बटर फ्लाइयाँ" होती थीं या नहीं-हमें यह ज्ञात नहीं है। हाँ, अपनी जानकारी के आधार पर इतना तो जरूर कह सकते हैं कि उस युग में पवित्रता और सदाचार तमाम हिन्दू-समाज के प्राण समझे जाते थे।

और आज का हिन्दू-समाज ?- उसका अक़ीदा है कि साली और सलहज दोनों ही उचित या अनुचित रूप से उपभोग की सामिग्री हैं। प्रत्येक बहनोई अपनी साली से गन्दे से गन्दी और सभ्यता से हीन बात कह सकता है, मज़ाक़ कर सकता है और प्रत्येक ननदोई को अपनी सलहज (साले की पत्नी) के मुक़ाबिले इतना ही हक़ हासिल है। सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि यह सभी आदर्श में ही समझे जाते हैं!!! बड़े-बूढ़े इसे 'पाप' नहीं मानते। कैसा अजीब विधान है।

अपने इस जन्म सिद्ध अधिकार का प्रयोग कभी-कभी विज्ञानशङ्कर भी कर लिया करते थे परन्तु बहुत सधी हुई तबियत से। देखने सुनने वाले समझते कितने भोले और साधु

पुरुष हैं—साक्षात् शङ्कर जी का अवतार लेकिन बात विरुद्ध थी:—"मुँह में राम और बग़ल में छुरी"

× × ×

कुछ दिनों बाद सरला को एक पत्र मिला:—

आनन्दपुर

ता०—८—६—२५

"प्रिय सरला देवी,

तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ,

मैं पत्र न डालने का अपना अपराध स्वीकार करता हुआ विनीत-भाव से क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा करता हूँ कि अवश्य क्षमा किया जाऊँगा।

आपकी बहिन (श्रीमती विमलादेवी जी) तो बताती थीं कि रामनगर उनका घर है और मैं (श्रीमान् पं० विज्ञानशंकर जी) उनको क्या पहुँचाऊँगा और अब उनका आना मेरे आने पर निर्भर हो यह तअाज्जुब की बात है।

मैं अगले शनिवार यानी ७ सितम्बर या स्यात् उससे भी पूर्व आने की सोच रहा हूँ।

सरला, तुम जैसी सुन्दर और योग्य क़ानूनी बहिन वाला होने का मुझे गर्व है। सत्य, पवित्रता, तप और सेवा की तुम मूर्ति बनो। स्त्री और पुरुषों के सच्चे स्थाई और पूर्ण आदर के कारण, यही गुण होते हैं। इन्हीं के आचरण से मनुष्य सदा अपने आप में सन्तुष्ट रह सकता है। और जिस मनुष्य

के पास आत्म-सन्तोष और आत्म सम्मान है, दुनिया में कोई आदमी कभी उसे दबा नहीं सकता।

सरला, मैं तुम्हें विद्या, सदाचार, सत्य की मूर्ति इसलिए भी देखना चाहता हूँ कि तुम से तुम्हारे और तुम्हारी बहिन के बच्चे सदाचार सीख सकें। तुम्हारे उदाहरण का अनुकरण कर सकें। जो मनुष्य समाज या कुटुम्ब के लिए उच्च आदर्श पेश करता है वही समाज का सबसे बड़ा उपकार करता है।

मैं उच्च आदर्शों की बहुत इज्जत करता हूँ। जिस किसी में इनकी झलक भी मिलती है उसका मैं मनसा-सेवक बन जाता हूँ। तुम समझ सकती हो कि तुममें इन बातों को देखकर मुझे कितनी खुशी नहीं होगी। भगवान तुमको निर्दोष बनावें और आनन्द से सदा पूर्ण रखें।

मैं यह सब तुमको इसलिए लिखता हूँ कि यह तुम्हारे लिए परीक्षा का समय है। शायद मेरे सिवाय तुमको इन बातों का उपदेश देने का और कोई अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व अनुभव नहीं करता। शेष कुशल है।

तुम्हारा परम हितैषी क़ानूनी भाई

विज्ञानशङ्कर"

आदर्शों से भरे हुए इस पत्र ने सरला के मन में जीजा-जी के प्रति न जाने कितने आदर के भाव पैदा कर दिये। उसने देखा कि श्रीमान् विज्ञानशङ्कर जी समाज के सामने उच्चादर्शों की प्रतिमूर्ति बन कर खड़ा होना चाहते हैं। वह उनके महान

चारित्रिक-गुणों पर हर्ष से फूली नहीं समाई। बेचारी सरला!

× × ×

सरला की बड़ी बहिन थी विमला। जिस प्रकार नाम में सादृश्य है उसी प्रकार रूप-रङ्ग और हँसने-बोलने में भी। लेकिन मनुष्य तो अपनी आदत से मजबूर है न। विज्ञानशङ्कर विमला को पाकर भी प्रसन्न नहीं थे। उनका झुकाव सरला की ओर होता जारहा था। घर के पकवान को छोड़कर दूसरों की रोटियों पर नीयत बिगाड़ने की, मानव की आदत, आज की नहीं है।

विमला के कोई बाल-बच्चा होने को था, इसलिए उसने अपनी सहायता के लिए सरला को बुला लिया था। वह लगभग एक माह से आनन्दपुर में ही थी।

सरला ने देखा उसके 'क़ानूनी भाई साहब' आजकल कुछ-कुछ रंगीले हो चले हैं। दिन में कई बार कपड़े बदलने के लिए अन्दर आते हैं। घर में खाने-पीने की चीजें भी अधिकता से आने लगी हैं। साग-सब्जी भी अच्छा-अच्छा आने लगा है। हाँ, सब से अधिक आश्चर्य की बात यही थी कि वे अपनी धर्मपत्नी से ज्यादा बात करना पाप समझते थे। दो टुकड़े जवाब दिया और नदारद। उनको सनक थी अपने आपको दार्शनिक जतलाने की। वे दिखाना चाहते थे कि हम गृहस्था-श्रम में रहते हुये भी साधु प्रवृत्ति का पालन कर रहे हैं।

एक दिन की बात है। विमला ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया था। वह अभी तक सौरी-गृह में थी। कुछ-कुछ बादल घिर रहे थे। शायद बूँदा-बाँदी के से आसार दिखाई देरहे थे। सरला अपने कपड़ों को सम्हाल-सम्हाल कर सूटकेस में रख रही थी— रामनगर से माँ का पत्र आया था वापस चले आने को।

सरला ने महसूस किया किसी के ठन्डे हाथों ने उसे आवेष्टित कर लिया है। उसके उन्नत वक्षस्थल पर कोई भार-सा आपड़ा है। वह मुड़ कर देखना ही चाहती थी कि विज्ञानशङ्कर ने उसे चूम लिया। अबोध कन्या हक्की-बक्की-सी रह गई। डर के मारे उसकी घिग्घी बंध गई। उसका दिल ज़ोरों के साथ धड़कने लगा। वह शायद चिल्ला पड़ेगी—ऐसा जानते ही विज्ञानशङ्कर दबे पैरों कमरे से बाहर निकल गए। लज्जा से सरला का मुह लाल होगया। आँसू बहने के कारण उसकी आँखों का महीन-महीन काजल न जाने कहाँ को बह कर चला गया। वह धस से फ़र्श पर गिर पड़ी। कपड़े अस्त-व्यस्त जहाँ के तहाँ पड़े रह गये। वह न जाने कब तक पृथ्वी पर पड़ी रोती रही। हाँ उस दिन भर विज्ञानशङ्कर घर नहीं लौटे। वे अपने दवाखाने में ही सारे दिन बैठे रहे।

× × ×

इस घटना के तीसरे ही दिन सरला रामनगर वापस आगई। वह जब कभी इस घटना पर और अपने जीजाजी के आदर्शों से भरे हुए पत्र पर विचार करती तो उसका हृदय काँप

सरला था। क्या मनुष्य का यही स्वरूप है ? ऊपर से आदर्शों की दुहाई देता है और भीतर से ? क्या यही आदर्श विज्ञानशङ्कर जी अपने बच्चों के सामने रखना चाहते थे ? समस्या एक सरला और एक विज्ञानशङ्कर की नहीं। हमारे घर-घर में यही समस्या है।

× × ×

सरला का विवाह होगया। वह अपनी ससुराल पहुँच गई। उसका पति प्रसन्न था सुन्दरी-भार्या पाकर और वह भी प्रसन्न थी घर-वर दोनों ही ठीक देखकर।

सरला के नाम एक पत्र जो विज्ञानशङ्कर ने भेजा था वह उसके पति को उसकी ही डाक में मिला। अनजाने में ही रामनारायण ने उसे खोल डाला। कई बार पढ़ने पर भी मतलब समझ में नहीं आया कि आखिर माजरा क्या है। रद्दी की टोकरी में से लिफाफा उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि पत्र सरला का है और उनके 'केयर आफ' आया है। चूँकि विज्ञानशङ्कर सरला की शादी में आये नहीं थे इस कारण रामनारायण की समझ में साफ-साफ नहीं आरहा था। आखिर इस सब का तात्पर्य क्या है ? पत्र इस प्रकार था:—

आनन्द नगर

प्रिय सरला, ता० × × ×

राम-राम। मैं आपकी शादी में सम्मिलित नहीं होसका, इसका मुझे बड़ा खेद है। मैं आपके दाम्पत्य-प्रेम की सफलता

चाहता हूँ।

मेरा खयाल है कि आपकी शादी से पूर्व मेरा आपका व्यवहार सर्वथा आदर्श नहीं तो नितान्त निन्दनीय भी नहीं रहा। उसमें जो कुछ सूक्ष्म अपवाद उपस्थित हुए उनके लिए मेरे पास कुछ कारण और हेतु थे। किन्तु वह सब, यद्यपि और किसी के लिए काफ़ी और क्षमतव्य भी हों, मुझे अब काफ़ी प्रतीत नहीं होते। मुझे अपने दोष काँटे की भाँति खटकते हैं।

ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिससे ग़लती न हुई हो। ग़लती होना अत्यन्त सहज और सरल है। किन्तु उसका मानना कठिन है।

मेरी ग़लती एक नितान्त काली घटना थी किन्तु उसमें कितने अंश कामुकता के थे और कितने और अंश थे यह मैंने अभी तक निश्चय नहीं किया है। मेरी ऐसी भी धारणा है कि उसके कई अंश पाप-पूर्ण नहीं भी थे। बिना इस विचार के कि उसमें कोई पाप-हीन अंश थे और मैंने कोई प्रायश्चित किया है आप मुझे लिखें कि ऐसी ग़लती का आपकी राय में क्या, कैसा और कितना प्रायश्चित करना चाहिये।—विज्ञानशङ्कर

रामनारायण ने वह पत्र ज्यों का त्यों सरला के सामने रख दिया।

"मुझे मालूम नहीं था कि यह पत्र आपका है। ग़लती से लिफ़ाफ़े का सिरा मेरे सामने था और मैंने उसे खोल डाला।"

"कोई बात नहीं है" सरला ने नारी-सुलभ लज्जा से उत्तर देते हुए कहा, "कोई ऐसी भयङ्कर घटना तो हो ही नहीं गई"

"लेकिन यह सब पचड़ा है क्या ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया ?" रामनारायण ने एक प्रश्न-सूचक मुख मुद्रा से पूछा '

"जब तक आपको पूरी कहानी न सुनाई जावे तब तक आप जान भी क्या सकेंगे।"

"तो बताइये न, क़िस्सा है क्या ?"

"बैठ जाइये"

और सरला ने निर्दोष-भाव से पूरी घटना सुना डाली।

"और इसको आपके जीजा जी ग़लती कहते हैं ? काँच का गिलास जमीन पर गिरकर टूट ही जाता है। नारी के सतीत्व पर हमला बोलना ग़लती बन कर नहीं छूट सकता-चाहे उसमें कामुकता के अंश हों या सात्विकता के। आपने पढ़ा न पत्र ? लिखते हैं उसमें कई अंश पाप-पूर्ण नहीं थे। तो क्या जीजा जी से साली का चुम्बन अपनी बेटी के रूप में लिया गया था ?" रामनारायण खिलखिला कर हँस पड़ा:—"अरे भाई ! यह तो हमारे समाज में रूढ़ियों का प्रभाव है।"

सरला के नेत्रों में दो बूँद आँसू के छलछला उठे।

"मैं उनको इस पत्र का उत्तर दूँगा। तुम भी पढ़ लेना"

और रामनारायण ने पत्रोत्तर भेज दिया।

कृष्ण-कुटीर

प्रिय भाई, ता० × × ×

—क़ानूनी भाई—

आपका पत्र मेरी पत्नी के नाम मिला, मैंने उसे कई बार पढ़ा और पढ़ कर आप पर क्रोध भी किया और प्रशंसा भी की। तारीफ इस बात की कि आपने अपनी भूल को स्वीकार करके समाज का बड़ा ही उपकार किया है। इसलिये हम दोनों आपको क्षमा करते हैं।

जहाँ तक मालूम हुआ है आप कोरे दार्शनिक बनने का प्रयत्न करते हैं और अपनी पत्नी के साथ भी रूखे-रूखे से रहते हैं। कारण क्या है वह तो आपही भली प्रकार जानते होंगे फिर भी आपने जो प्रायश्चित की बात लिखी है, सो यदि आप प्रायश्चित करना ही चाहते हैं तो इस भूल के प्रायश्चित-स्वरूप आप अपनी पत्नी को अपना सम्पूर्ण-स्नेह प्रदान कर दीजिए— द्वैत की भावना को मिटा डालिए—बस।

रामनारायण, सरला,

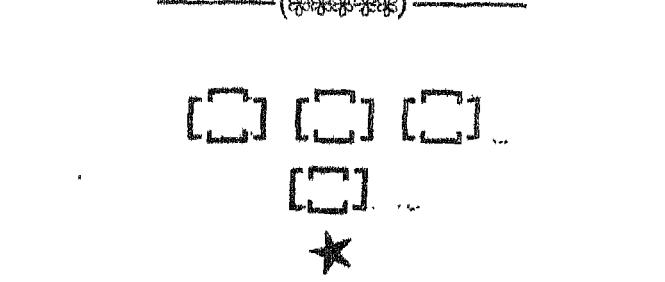

कैसे ब्याहूँ राधा

"—और तुमनें सचमुच गाँधी जी को देखा है ?"

"हाँ राधा ! सचमुच ।"

"झूठा कहीं का"

"विश्वास नहीं होता क्यों ?"

"विश्वास की क्या बात है अगर देखा है तो बताओ न वे कैसे हैं ।"

"कैसे हैं बताऊँ ?"

"हाँ"

और कन्हैया नें राधा को अपनी बलिष्ठ भुजाओं से उठाकर बरगद के पेड़ के सहारे खड़ा कर दिया । पास ही पड़ी एक सूखी-लम्बी-सी लकड़ी उसके हाथ में थमा दी और अपनी जेब से घड़ी निकाल कर राधा की कमर में खोंस दी । कछौटा मारे हुए राधा को देख कर वह हँस पड़ा ।

'वे एसे हैं राधा ! हमारे और तुम्हारे जैसे । मैं उन्हें बहुत प्यार करता हूँ । जो भी एक बार उन्हें देख लेता है 'गाँधी जी की जय' पुकारनें लगता है । बापू जी बड़े ही अच्छे हैं राधा ! वे गाते हैं:—वैष्णव-जन तो तेनें कहिये पार पराई जानें ।"

"बरगद के नीचे इकट्ठे बालक-बालिकाएँ एक साथ ही गा उठे:—वैष्णव जन तो तेनें कहिये पीर पराई जानें ।"

"ए कन्हैया" सहसा राधा नें स्वर-भेद कर कहा ।

"हाँ"

"तुम लोग उनकी सभी बातों को मानते हो ?"

"चालीस करोड़ छोटे-बड़े उनके भक्त हैं राधा !"

"अच्छा तो सुनो। मैं महात्मा गाँधी तुमको आज्ञा देता हूँ कि तुम सब अपने देश की खातिर मर जाओ" गंभीर वाणी से राधा ने कहा।

कन्हैया चुप चाप धरती पर लेट गया। उसके सङ्ग ही सभी बालक और बालिकाएँ धूल में सो गये। न जाने कुछ समझ कर या केवल कन्हैया की देखा देखी।

और राधा छपाक से नदिया में कूद पड़ी।

(२)

कन्हैया, गाँव का रहने वाला, जिसने आज से पहले कभी शहर की झाँकी भी नहीं ली, जब इलाहाबाद की लम्बी चौड़ी सड़कों पर आया तो उसका दिमाग चकरा गया। अरे ! उसके गाँव में तो सिर्फ जमीन्दार की पक्की हवेली है जो आसमान से बातें करती है। लेकिन यह गाँव कैसा जहाँ सभी जमीन्दार हैं। सभी के पास बड़े-बड़े मकान हैं, गगन-चुम्बी। नीचे-ऊपर, इधर-उधर देखता हुआ कन्हैया आगे बढ़ता चला जा रहा था। कभी ताँगे-इक्कों वालों के वाक्य-बाणों का शिकार बनता, तो कभी कोई राहगीर एक-दो रिमार्क कस देता— लेकिन बेचारा कन्हैया मौन, शान्त भाव से बढ़ता चला जा रहा था।

उसने देखा, एक मकान के दरवाजे पर बड़ी भीड़ लगी हुई है। इच्छा हुई उसे देखा जाय और वह कौतूहल वश वहाँ जा

धमका। भीड़ काफी थी। उसने देखा इन सब के बीच में एक गोरा-चिट्टा, आकर्षक-व्यक्ति मुस्कुराता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। उसके गले में बीसियों फूल मालाएँ पड़ी हुई हैं। सहसा भीड़ में से एक आवाज आई "पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय" मन्त्र मुग्ध-सा कन्हैया भी उन सहस्रों कंठों के साथ बोल उठा "पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय"

दूसरे ही क्षण उसके मन में एक प्रसन्नता की लहर गूँज उठी। ओह! यही नेहरू जी हैं, देश के प्राण, नवयुवकों के आदर्श उसके गाँव में जिस राजकुमार के त्याग की चर्चा रात-रात भर होती रहती है, यह वही नेहरू जी हैं। उसकी आँखों में आनन्द के आँसू छल छला आये। नेहरूजी आनन्द-भवन में चले गए। वे शायद नैनी जेल से लौटे थे। धीरे-धीरे करके सभी चले गये, लेकिन कन्हैया? अकेला कन्हैया बरामदे में बैठा हुआ चने चबाता रहा। कौन जाने वह कितने घन्टों तक योंही बैठा रहा। खम्भे के सहारे बैठे ही बैठे उसकी झपकी लग गई।

कन्हैया को जान पड़ा जैसे उसको किसी ने जगाया है। उसने भड़ भड़ाकर आँखें खोल दीं। विश्वास नहीं हुआ आँखों पर, ओ यह तो वही पंडितजी हैं? उसने कहीं सपना तो नहीं देखा है? नहीं, नहीं, वह होश में है और अपनी चेतनता के ज्ञान के लिए उसने अपने पैर में एक चिकोटी काट कर देख लिया। ठीक है, वह जाग रहा है ऐसा ज्ञान होते ही वह उठ खड़ा

हुआ और उसने पंडितजी के चरणों में अपना मस्तक रख दिया।

"यह क्या करते हो भाई! उठो उठो" कहते हुए पंडितजी ने कन्हैया को अपने दोनों कर-कमलों से उठाकर अपने वक्षस्थल से लगा लिया। "कभी किसी के पैरों पर सिर मत रखो, समझे यह भी गुलामी है।"

"आप ब्राह्मण हैं और हम मल्लाह! आप सब तरह से हमारे पूज्य हैं" कहते-कहते कन्हैया की आँखों में आँसू की दो बूँदें छलक उठीं। वह शायद पंडितजी के पुण्य वाक्यों को समझ कर भी नहीं समझना चाहता था।

"कहाँ रहते हो?"

"मधुपुर"

"क्या करते हो?"

"नाव चलाता हूँ"

"अब क्या चाहते हो?"

"शहर में आया था। सोचा था दो-चार दिन बाद गाँव लौट जाऊँगा लेकिन अब मन नहीं चाहता।"

"क्यों?"

"मुट्ठी में सोना पाकर कोई भी नहीं छोड़ना चाहता पंडितजी।"

"क्या मतलब?" पंडितजी ने देखा, मल्लाह ने कितनी फिलासॉफीकल बात कही है।

"आप मुझे अपनी सेवा में रखले।"

"क्या काम करोगे।"

"जो आप हुकुम देंगे।"

"अच्छा रहो—हाँ लेकिन तुम्हारा नाम?"

"कन्हैया"

और तब से रहते-रहते कन्हैया ने पंडितजी की घोड़ा गाड़ी चलाने का काम भी सीख लिया था।

कई वर्ष सुनहले पंखों की तरह पर फड़फड़ाते हुए योंही निकल गये। अब कन्हैया सत्रह अठारह वर्ष का नवयुवक हो चुका था। घर वालों के विशेष आग्रह पर वह एक माह की छुट्टी लेकर अपने गाँव में आ गया था।

(३)

"कन्हैया, कन्हैया" दूर, नदी तीर से एक मीठी—सुरीली-सी आवाज ने कन्हैया को चौंका दिया।

चाँदनी छिटकी हुई थी। "पूनम का चाँद" अपनी समस्त कलाओं से आकाश में विहार कर रहा था। रजनी मंद मंद गति से झिलमिल-झिलमिल तारों वाली साड़ी में गुड़ियों-सी लिपटी हुई भागी जा रही थी।

कन्हैया—सुखुआ का बेटा। गाँव के खाते-पीते घराने का एक प्राणी अपनी छोटी—सी डोंगी में नदिया की सैर करने को निकल पड़ा था। घर से निकलते ही राधा ने उसे ताड़ लिया था, इसलिये वह भी दबे पैरों नदी किनारे जा पहुँची। कन्हैया की नाव बीच धार में बही जारही थी कि राधा ने उसे पुकारा।

–कैसे ब्याहूँ राधा–

"कन्हैया, कन्हैया"

डाँडों ने अपना रुख बदल दिया। अवसर वादियों की तरह नाव ने जो पलटा खाया तो कन्हैया और उसकी नाव दोनों ही किनारे पर मौजूद थे।

"अरे! राधा·····   ···?'

"हाँ! जरा पास आओ न!"

"क्यों?"

"हम भी नाव पर चलेंगे"

"लेकिन एक शर्त है"

"वह क्या?

"एक गीत सुनाना पड़ेगा"

"अच्छा"

सहारा देकर कन्हैया ने राधा को नाव पर बिठा लिया मल्लहा का बेटा नौका चलाने में कितना चतुर है उसकी परीक्षा देने के लिये कन्हैया ने अपनी नौका मँझधार में डाल दी। तीव्र गति से नौका बह चली इधर राधा के कोकिल कंठ से मीठे-मीठे स्वर फूट पड़े :—

"कैसे ब्याहूँ राधा, कन्हैया तेरो कारो—कैसे ब्याहूँ राधा·····"

कन्हैया चौंक उठा। उसकी भौंहें आवश्यकता से अधिक टेढ़ी हो गईं। बात ही ऐसी थी। यदि काने को काना कह दिया जाय तो वह बुरा मानेगा ही। कन्हैया अर्थात

मेघाच्छन्न तिमिराभूत रात्रि और राधा अर्थात पूर्णिमा का जगमगाता हुआ कलाधर । एक पूर्व तो दूसरा पश्चिम । दोनों का मेल हो भी तो कैसे । कन्हैया ने खीजकर डांडें छोड़ दीं ।

"क्यों क्या हुआ ?" राधा ने पूछा ।

"चुप हो जाओ राधा"

"क्यों ? तुमने ही तो कहा था एक गीत गाना ही पड़ेगा ।"

"हमें यह गीत अच्छा नहीं लगता है"

"अच्छा जी, लेकिन हमें बड़ा सुन्दर लगता है । कैसे ब्याहूँ राधा......"

"राधा ने फिर एक बार अपनी स्वर लहरी से वातावरण को मुखरित करदिया ।

"देखो राधा ! गुस्सा आगया तो नदी में धकेल दूँगा ।"

"और एसा करना बिल्कुल अहिंसा होगी क्यो ?"

"बड़ी बातें करना आगया है राधा ! बचपन में तो तू एसी थी नहीं ।"

"और बचपन में तुम्ही कहाँ के चालाक थे ? भोंदू, डर के मारे खेलने तक को तो आते नहीं थे ?"

"राधा" न जाने कितना प्यार उँडेलते हुए कन्हैया बोला ।

"कन्हैया" राधा कुछ खोई-खोई सी उसकी ओर देखने लगी ।

—कैसे ब्याहूँ राधा—

राधा ! आखिर हम लोग कब तक इस प्रकार चोरी-चोरी मिलते रहेंगे ?"

"जब तक राधा को लेकर बरसाने से भाग नहीं जाओगे"

"बड़ी नटखट ! बात-बात में हँसी करती है ?"

"तुम्हारे काम ही एसे हैं कन्हैया ! इन पर हँसना ही पड़ता है । राधा को बरगद के नीचे छोड़ कर आज इस कुबिजा नौका पर रीझे हो न ? तुम्हारा क्या पता, कल न जाने किस पर रीझ जाओ ।"

"नहीं, राधा ! मैं चाहता हूँ हमारी-तुम्हारी शादी होजाय"

'तब तो मुझे नदिया में नहीं फेंक सकोगे ? क्यों ? फिरतो मैं जी भर कर गाऊगी—कैसे ब्याहूँ राधा······"

निर्दोष हास्य से वायु मण्डल गूँज उठा । दूसरे क्षण पूनम के चाँद पर एक काले बादलों का टुकड़ा आकर ठहर गया । कन्हैया ने देखा और राधा ने पहचाना कि नदी किनारे बिजपतिया यानी राधा का बाप लाठी हाथ में लिए हुए खड़ा है ।

"जल्दी-जल्दी नाव किनारे पर लगादो । काका आगये हैं ।"

राधा के कहने पर कन्हैया ने नाव किनारे पर लगादी ।

"क्योंबे कन्हैया के बच्चे ! साले ! दूसरों की बहू-बेटी को बहकाता फिरता है ।" बिजपतिया ने जोर से कहा

कन्हैया जब तक कुछ जवाब दे-दे तब तक तो बिजपतिया की लाठी का नपा-तुला हाथ उसकी खोपड़ी पर जा बैठा ।

कन्हैया चक्कर खाकर गिर पड़ा। राधा ने दौड़ कर उसे उठाने की चेष्टा की-त्योंही बिजपतिया ने उसकी चोटी पकड़ कर एक लात कस कर जमादी।

"बाप दादों का मुँह काला करेगी हरामजादी! जान से मार दूँगा हाँ। मेरा नाम बिजपतिया है। भला"

लड़की की जात। बेचारी कन्हैया को वहीं छोड़ कर रोती कलपती हुई बाप के साथ चलदी।

(४)

किसी जमाने की बात है। सुखुआ के परदादा के बाबा के बाप ने बिजपतिया के खानदानों के खेत छिना लिये थे और फौजदारी में दो-दो साल की सजा भी करादी थी उसी पुराने बैर को दोनों खानदान वाले अपनी नाक की तरह साबित रखे चले आरहे थे। एक- दूसरे से बात नहीं करता था। राह घाट अगर कहीं एक दूसरे को देख लेता तो मारे गुस्से के जमीन पर थूक देता, नाक-भौंह सिकोड़ लेता, व्यंग-बाँण चल पड़ते थे। इस प्रकार के झगड़े की कोई सीमा नहीं थी। गोबर और कूड़े तक पर लाठियाँ तन जाती थीं। मुकदमे बाजी में हर साल सैकड़ों रुपये बिगड़ जाते थे लेकिन जल जाने के बाद भी रस्सी की ऐंठ नहीं निकल पारही थी।

कभी—कभी ऐसा भी देखा गया है कि बड़ों में जिस बैर की नींव जम जाती है बालक उसे छिन्न-भिन्न कर देते हैं। राधा और कन्हैया दोनों ही ऐसे बालक साबित होरहे थे। बचपन

से ही एक दूसरे का खिचाव था। छिप-छिप कर खेलते। मिट्टी का महल बनाते और न जाने क्या-क्या सोचते विचारते। कन्हैया जब शहर चला गया तो राधा एक दम उदास होगई थी। महीनों तक उसे एसा ज्ञान पड़ता मानो उस के शरीर में प्राण ही नहीं है। वह अनखाई-सी रहती। बाहर भी नहीं निकलती। नदिया का नहाना उसे अच्छा नहीं लगता था और कभी-कभी तो वह अपने काका से झगड़ा कर बैठती थी।

जब से कन्हैया गाँव में आया है तब से उसके चेहरे पर खून दौड़ने लगा था। परन्तु बीच में ही एक अघटित घटना मार-पीट की होगई।

"हम इसका बदला लेंगे" कन्हैया के दोनों भाइयों ने एक स्वर से कहा।

"तुम बैठो अभी सुखुआ ही क्या कम है। बिजपतिया को एक ही हाथ में जमीन न दिखा दूँ तो मल्लाह का बेटा मत कहना, हाँ।" कन्हैया के बाप ने कहा।

कन्हैया ने अपने अधखुले नेत्रों से देखा, कुछ एसा होने जारहा है जो उसे अच्छा नहीं लगता।

"काका" क्षीण-स्वर में कन्हैया ने पुकारा।

"बेटा" सुखुआ के चढ़े हुए स्वर में एक दम नरमी-सी आगई।

"काका! तुम उनसे कुछ मत कहना"

"क्यों बेटा! खून का बदला खून से ही लिया जा सकता है"

"नहीं काका ! नहीं" उसने अटक-अटक कर कहा -'काका'! दुश्मनी को खत्म करो दुश्मन को नहीं, उसके मन को प्रेम से जीत कर छोड़ दो। वह सदैव के लिए तुम्हारे आधीन होजायगा ।"

"क्या कह रहे हो कन्हैया"

"मैं नहीं कहता काका ! यह तो गाँधीजी ने कहा है"

"गांधीजी ने ? महात्मा जी ने यह कहा है कि अपने दुश्मन को प्रेम से जीत लो"

"हाँ काका !"

"तो बेटा ! हमारा उनको लाख-लाख 'परनाम' है" यह कह कर अर्द्ध-शिक्षित सुखुआ ने श्रद्धा भाव से जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम कर दिया।

"अब कहीं मत जाना काका तुम भी बैठो भय्या ।"

चोट कुछ ऐसी ज्यादा नहीं थी-फिर भी मामूली उपचार के बाद कन्हैया दूसरे दिन से ही स्वस्थ हो चला था ।

और राधा ?-उसने रो-रा कर अपनी आँखें फुलाली थीं।

(५)

चुनाव का दौर चल रहा था । नेता लोगों की दौड़-धूप जारी थी। जगह-जगह सभाएँ होरहीं थीं। मधुपुर में भी सभा की सूचना आई थी। कहा गया कि पं जवाहर लाल नेहरू स्वयं व्याख्यान देंगे। आस-पास के सभी ग्रामीण लोगोंको बुलावा भेजा गया था। कन्हैया अपने दोस्तों के यहाँ भी गया और दुश्मनों के यहाँ भी। उसने सभी से हाथ जोड़-जोड़ कर सभा में चलने

को कहा। जय-जयकार के बीच पंडित जी आये। धूल में लिपटे हुए। खादी के सफेद कपड़े धूल धूसरित होरहे थे। कन्हैया के आनन्द की सीमा नहीं थी। सहसा भीड़ में से राधा ने चुपके-चुपके कन्हैया के कुरते का छोर अपना ओर खींचा। नेत्रों की भाषा में दोनों ही बोले-समझे। राधा ने एक छोटी-सी पोटली कन्हैया के हाथों में थमादी और भीड़ में गायब होगई।

कन्हैया ने उसे खोला। ओह! चमेली के छोटे-छोटे फूलों को गूँथ कर एक माला तयार की थी राधा ने पंडित जी के लिए! कन्हैया मन ही मन राधा के गुणों पर निछावर होगया।

आगे बढ़ कर कन्हैया ने पंडित जी के गले में ताजे फूलों की माला पहनादी। पंडित जी ने उसे पहचान लिया।

"कन्हैया?"

"हाँ मालिक।" और उसके नेत्र सजल हो उठे।

"अरे! तुम्हारी आँखों में आँसू कैसे?"

"इनके सिवा और हमारे पास है ही क्या मालिक! यही तो हमारी परवशता है। वरना तो हमारे सिरताज पधारें और हम उनका स्वागत भी ठीक तरह से न कर सकें।"

"तुम्हारा प्रेम ही मेरे लिए बहुत है कन्हैया। तुम लोगों के निश्चल प्रेम को पाकर मैं अपने आप को भूल जाता हूँ।

नेहरू जी का व्याख्यान हुआ, बड़ा जोशीला। लोगों के दिल उछल-उछल पड़े। पास ही खड़े विजयसिंह ने यह सब देखा-सुना और वह सुखुआ का हाथ पकड़ कर सभा में से एक

ओर लेगया।

"सुखुआ! अगर नेहरू जी हमारे लिए, हमारी भलाई के लिए अपना राज महल छोड़ सकते हैं। अपने ऐशो-आराम को ठोकर मार सकते हैं तो क्या हम लोग अपनी दुश्मनी भी नहीं छोड़ सकते?"

"बिजपतिया भाई। हम तुम इसी दुश्मनी में कङ्गाल हो हो गये। खतम हुए जारहे हैं लेकिन यह दुश्मनी ज्यों की त्यों बनी हुई है।"

"अच्छा तो आओ! आज इसी सगरी को खतम कर डालें। आज गले से गले मिलकर हम तुम एक हो जाऐं और कल फिर छाती से छाती मिला कर एक हो जाऐंगे"

दो-दो बार कैसे ठाकुर"

"आज तो दुश्मनी खतम करते हैं न? और कल कन्हैया के ब्याह में हम एक दूसरे के समधी जो होंगे।"

"सचमुच" सुखुआ ने आश्चर्य भरी मुद्रा से पूछा।

"और क्या झूँठ! लेकिन एक शर्त है?"

"वह क्या?"

"शादी के बाद कन्हैया मेरे ही पास रहे। तुम्हारे तो राम राखे और भी लड़के हैं और मेरे तो सिर्फ यही एक राधा है।"

"मुझे मंजूर है भय्या! लड़का लेकर ही वैर चुका सको तो यह भी सही। मुझे तो दुश्मनी को समाप्त करना है।"

और सभा से लौटने वाले लोगों के आश्चर्य की सीमा

न रही जब उन्होंने देखा कि बिजपलिया और सुखुआ दोनों एक दूसरे के गले में बाँहें डाले अपने 'गाँव के गिरारे' में चले जा रहे हैं।

लोगों की धारणा पक्की हो चली कि अब हमारे देश के सुदिन आरहे हैं। पंडित जी के छोटे से व्याख्यान में जब इतनी शक्ति है कि खान्दानी वैर समाप्त हो सकता है तो जिस दिन यह ज्वालामुखी फूट फैलेगा उस दिन साम्राज्य की जड़ें निश्चय ही डोल जायँगीं।

(६)

"कैसे ब्याहूँ राधा कन्हैया तेरो कारो"

नदी-किनारे खड़े हुए कन्हैया ने सुना। वीणा-विनिन्दित-स्वरों में राधा ही तो गारही है! चाँदनी रात में, उसके माथे पर लगी हुई काँच की टिकुली चम-चम करके चमक रही थी। लाल रंग की घाँघरी और पीले रंग की ओढ़नी में वह आज कुछ अजीब-अजीब-सी लग रही थी। पैरों में काँसे के बिछुए 'झन-झन खन-खन' कर रहे थे। वह नौका पर बैठी हुई डाँडें चला रही थी। कन्हैया पास वाली झाड़ी की ओट में होगया। नाव ज्यों-ज्यों समीप होती गई त्यों-त्यों वह भी स्पष्ट होता गया—"कैसे ब्याहूँ राधा···"

आज कन्हैया को यह गीत बुरा नहीं लग रहा था। उसने झाड़ी के पीछे से राधा के स्वर में स्वर मिलाकर गाया :—

"मत कहै ग्वालिन कारो-कारो,
कारो जगत उजियारो ।
कालिन्दी में नाग जो नाथ्यो,
मारी फुसकार बदन भयो कारो ।।

राधा की नाव किनारे पर लग चुकी थी । कन्हैया ने चुपचाप पीछे से आकर राधा को अपनी भुजाओं में कसकर बाँध लिया । वह चौंक पड़ी । दूसरे ही क्षण दोनों की निर्दोष हँसी सारे प्रान्तर में गूँज गई । चन्द्रदेव लजाकर बदली की ओट में आ छिपे ।

—और उन तीनों में, एक नवयौवना थी जो हरिणी की भाँति कुलाँचें भरती हुई इधर-उधर दौड़ रही थी। शायद वे तीनों आँख-मिचौनी खेल रहे थे। दो किशोर युवक उसका पीछा कर रहे थे।

नन्दन-कानन के समान छोटा-सा बाग फल-फूल रहा था। गदराये हुए सेबों के पेड़ अपनी यौवन-छटा चारों ओर छिटका रहे थे। अंगूर की बेलें अज्ञात-यौवना की भाँति बिखरी पड़ रही थीं। बादाम के पौधे सिर उठा उठा कर इधर-उधर देख रहे थे।

दौड़ते-दौड़ते नवयुवती थक गई-इसी कारण वह पास के शिला-खण्ड पर धम से बैठ गई। उसकी साँस बड़ी तेजी से चल रही थी और उसका दिल धक-धक कर रहा था। झीनी-झीनी सी सफेद, साड़ी में से उसका सुडौल अंग-प्रत्यंग 'ट्रान्सपेरेन्ट' (पारदर्शी) जान पड़ रहा था। ऐसा ज्ञात होता है कि केशव-कवि सम्राट को किसी ऐसी ही उरोजी ने 'बाबा' कह दिया होगा, और तभी उन्हें अपने केशों पर झुंझलाहट आगई होगी। उसके ओठ बिना 'लिप-स्टिक' के ही लाल होरहे थे। उसके घुंघराले, लम्बे, घने और काले बाल, हवा में फरफरा रहे थे।

सामने वाले घास के मैदान में शिला-खण्ड पर नवयुवती को बैठा हुआ देख कर दोनों किशोर भी उसके पास आकर

लद-पद गिर पड़े। तीनों की निर्मल-हँसी से सारा वातावरण मुखरित हो उठा।

"अच्छा खेल खतम" उरोजी ने कहा,

"अच्छा" और दोनों किशोर उसकी ओर मुँह करके घास पर कुहनियों के बल लेट गये। तीनों मौन थे। उनकी आँखों में जो स्नेह के भाव नाच रहे थे, वे स्थायी और पवित्रता को साथ लिए हुए जान पड़ रहे थे। बड़ी देर बाद उनमें से एक ने कहा :—

"एक बात पूछूँ उरोजी! बताओगी?"

"पूछो न, मैंने तुम्हें कभी मना किया है अनङ्ग!"

"नहीं, नहीं आज की बात कुछ साधारण नहीं है। जरा सोच समझ कर जवाब देना होगा"

"लेकिन कहो भी तो?"

"लो सुनो। अब हम तीनों अपने बचपन की यात्रा को पूरा करके यौवन के द्वार पर खड़े हुए हैं। कलियाँ चटखने लगी हैं और कल वे फूल के रूप में खिल जायँगी"

"यह तो प्रकृति का नियम है अनंग"

"और जब फूल-फूल होजाता है तो उस पर मधुकर रीझने लगते हैं उरोजी! हम तीनों के सामने एक ही प्रश्न है। हम तीनों आपस में हरेक को प्यार करते हैं।"

"अनंग ठीक कह रहा है उरोजी!" कुछ ऊपर की ओर उठते हुए अशोक ने कहा :—"आखिर एक न एक दिन तो

इसका निर्णय करना ही होगा। एक म्यान में दो तलवारें कभी रह नहीं सकेंगी।"

"अशोक! मैं तुम लोगों का तात्पर्य बिल्कुल भी नहीं समझी।"

"बात बिल्कुल साफ है उरोजी! अशोक और अनंग दोनों में से तुम्हें किसी एक को चुन लेना है।"

"यह बात है?"

"हाँ"

"मान लो मैंने निर्णय दे दिया और दोनों में से किसी एक को चुन भी लिया तो दूसरा-दूसरा क्या ईर्ष्या से जल नहीं उठेगा?"

"अनंग में ऐसी भावना आज तक जागृत ही नहीं हुई उरोजी!"

"फिर मेरा तो नाम ही अशोक है। मुझे शोक क्यों होने लगा?"

"देखो जी! मैं तो दोनों को ही प्रेम करती हूँ-फिर भी अपने देश की प्रथा के अनुसार मुझे एक ही 'वर' चुनना होगा। अच्छा तुम दोनों इस सेब के पेड़ के नीचे खड़े हो जाओ। मैं इसकी डाली को जोर से हिलाती हूँ। सब से पहले जिसके सिर पर सेब गिरेगा, मेरा साथी वही होगा।"

सुन्दरी ने वैसा ही किया और भाग्यशाली अनंग के सिर पर फल गिरा—अशोक ने आगे बढ़कर अनंग को गले

से लगा लिया।

"बधाई मित्र ! अनंग ! लेकिन इस रत्न को सम्हाल कर रखना"

"तुम्हारी मित्रता के साथ ही साथ उरोजी का स्नेह भी मुझे मिलता रहेगा ऐसी आशा है अशोक !"

"बराबर अनंग ! बराबर ! मैं और उरोजी दोनों ही तुम्हारे रहेंगे।"

इस प्रकार किशोरों की बात बड़ों में भी पहुँच गई। एक शुभ मूहूर्त में उरोजी ने अनंग के गले में 'वर-माला' डाल दी। अशोक के मन में न कोई प्रतिस्पर्धा थी, न ईर्ष्या और नाहीं कमी थी उत्साह की। उसे ऐसी प्रसन्नता थी मानो उसीका विवाह होरहा हो। प्रथा के अनुसार उसने अपने हाथों से मँहदी पीसकर उरोजी के हाथ-पैरों को बड़े मनोयोग से रचाया और 'विदा' के समय जी-भर कर और झोलियाँ भर कर आशीर्वाद भी दिया।

× × ×

भारत वर्ष की उत्तर-पश्चिम सीमा और हिन्दू-कुश पर्वत के मध्य में जो देश है वहाँ जाकर ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा समाप्त होजाती है। यहाँ लगभग पाँच हजार मीलों में फैला हुआ एक प्रदेश है जिसे लोग 'काफिरस्थान' के नाम से पुकारते हैं। इस देश के पश्चिमी सीमान्त पर अफगानिस्तान की अलिसाँग नदी है और दूसरी नदी कुनार भी है। यहाँ के

रहने वालों को, मुसलमान लोग, काफिर या सियाहपोश के नाम से पुकारते हैं। यहाँ के सभी स्थानों में किसी परदेशी का पहुँचना आसान तो क्या सम्भव ही नहीं है।

महाभारत में इस देश का नाम बर्बर कहा गया है—यह शायद इसी कारण हो कि यहाँ के निवासी उद्धत-स्वभाव होते हैं। इस देश में सबसे पहले एक ब्राह्मण ने आकर राज्य-स्थापित किया था। रामायण के अनुसार इस देश में कैकय-राजा शासन करते थे। महाराज अशोक से लेकर कनिष्क तक ने अपनी विजय-वैजयन्ती यहाँ फहराई थी। बौद्धों का भी यहाँ काफी जोर रहा और उनके मठ-मन्दिरों के भग्नावशेष आज भी पाये जाते हैं। यहाँ की भाषा की घनिष्ठता संस्कृत के साथ है। अब तो यहाँ कुछ मुसलमान भी हो गये हैं। अन्यथा यहाँ सदैव आर्य-संस्कृति का बोल बाला रहा है। इनके रस्मो रिवाज भी अजीब हैं। व्यभिचार के लिए स्त्री को सामान्य और पुरुष को भीषण दण्ड दिया जाता है। विजित शत्रुओं की स्त्रियों को दासी बनाकर रख लेते हैं। जातियाँ प्रायः तीन हैं, रामगल, वैगल और वासगल। इनके देवता का नाम 'इम्ब' (इन्द्र) है। मन्दिर भी भारतीय ढंग के होते हैं और गाँवों के नाम भी विचित्र होते हैं जैसे कतार, गंभीर, अरनस और पंडित।

—सो हमारी यह कहानी पंडित नामक स्थान से सम्बन्ध रखती है।

× × ×

"तुमने क्या देखकर अनंग को पसन्द किया है उरोजी !" कमल ने मानो उलाहना देते हुए कहा :— 'रूप-रँग, जवानी, रुपया, क्या चीज है उसके पास ?"

"उरोजी ने केवल अनंग का प्रेम देखा है कमल !"

"सूखे प्रेम से क्या होता है ?—"

"अब तो जो कुछ होना था सो होगया कमल !"

"अभी बिगड़ा ही क्या है उरोजी ! मैंने वर्षों से तुम्हारी उपासना की है, लेकिन मेरी साधना निष्फल ही गई मालूम होती है। जरा मेरी ओर देखो तो उरोजी ! मेरी और तुम्हारी जोड़ी···राम और सीता की जैसी रहेगी।"

'रास्ता छोड़ दो कमल ! मुझे जाने दो"

"तुम यहाँ···गाँव से दूर···बहुत दूर खड़ी हुई हो उरोजी ! मैंने आज तुम्हें बड़ी मुश्किल से पाया है।"

"क्या पागल होगये हो कमल !"

"हाँ, तुम्हें देखकर कौन पागल नहीं हो जायगा ? आओ, उरोजी ! मैं तुम्हें जी भर कर प्यार कर लेना चाहता हूँ।"

कमल : जमींदार का अकरण-नकरण और सुन्दर-बेटा, यौवन की लहरें जिसके मन में हिलोरें मार रही थीं। उरोजी कतरा कर भाग जाना चाहती थी परन्तु कमल ने अपनी बलिष्ठ बाँहों में उसे जकड़ लिया। उरोजी के मुँह से एक हल्की सी चीख निकली और वह बेहोश होगई।

कमल ने ज्यों ही मुँह झुकाकर निर्दोष, सु-पवित्र उरोजी का चुम्बन करना चाहा त्यों ही उसे मालूम हुआ, मानो किसी ने उसके सिर पर वार किया है। उसका सिर फट गया और उससे रक्त की धारा बहने लगी थी। उसके हाथों के बलिष्ठ-बन्धन से उरोजी छूट पड़ी और वह हड़बड़ा कर खेत की मेंड पर जा गिरा। रक्षक ने उरोजी को अपने कन्धे पर डाल लिया और वह गाँव की ओर चल पड़ा।

× × ×

"अब क्या होगा अशोक ?"

"जो होगा वह देखा जायगा अनंग ! मेरी आँखें किसी निर्दोष प्रतिमा को खन्डित होते हुए नहीं देख सकती थीं"

"वह जमींदार का बेटा है अशोक ! उसकी बात ज्यादा चलेगी "

"तो क्या हुआ दो-चार वर्ष की सजा ही तो होगी ? देखा जायगा"

और हुआ भी कुछ एसा ही। पंचायत की अदालत ने पक्ष करते हुए अशोक को पाँच वर्ष की सजा का हुक्म देदिया।

जिस जेल में अशोक रहता था वह एसी जेल नहीं थी जैसी ब्रिटिश-राज्य में होती है। कच्ची मिट्टी की दीवारें, दो-एक सन्तरी और एक-दो अफसर। कैदी लोग ईमानदारी से अपनी सजा काटते रहते थे। कोई कड़ा प्रतिबन्ध नहीं था।

'मिलाई' के दिन निश्चित नहीं थे और कभी-कभी तो कैदियों के स्त्री-बाल बच्चे भी उनके साथ रख दिये जा सकते थे।

× × ×

आसमान में हल्के-हल्के बादल छाये हुए थे। कुछ-कुछ बूँदा-बाँदी भी हो रही थी। कैदी अशोक ने अपनी कोठरी के सामने कुछ बादाम के पौधे और अशोक के वृक्ष लगाये थे। अभी-अभी उसने नई खाद डालकर उनको ठीक-ठाक किया था कि पानी बरसने लगा। उसे बड़ा क्रोध आरहा था इस मेह पर। बताइये दो वर्ष से जिन नन्हे-नन्हे प्राणियों को उसने पाल-पोस कर इतना बड़ा किया उन्हे 'इन्द्र-देवता' जड़-मूल से उखाड़ देना चाहते थे। उसने लकड़ियों के सहारे एक वितान बनाया और उन पर अपनी चद्दर तानदी। पौधों पर छींटे पड़ रहीं थीं बस और कभी-कभी चादर से छनकर बरसाती पानी भी उनके साथ मजाक कर लेता था। खुरपी हाथ में लिये-दिये वह अभी उठा ही उठा था कि उसने अचकचा कर आने वाले प्राणी की ओर देखा।

"तुम···तुम···तुम···अनंग···तुम अभी परसों ही तो हमारी तुम्हारी भेंट हुई थी—और आज ?"

"अब तुम्हारे साथ कई वर्षों तक रहने के लिए आया हूँ अशोक !"

"क्या मतलब ? —आओ, मेरी कोठरी में चलो"

"बड़े मजे की बात है अशोक।" चलते-चलते अनंग ने कहा :—"वह जमींदार का लड़का था न कमल!"

"हाँ, हाँ" अशोक ने बड़ी उत्सुकता पूर्वक अनंग को देखते हुए कहा :— "हाँ, क्या हुआ उसका?"

"यह देखो" यह कह कर अनंग ने अपने गले में पड़ी हुई उसकी तसवीर दिखाई :—"समझ गये।"

"गजब कर दिया अनंग! तुमने उसे जान से मार दिया?"

"और क्या, दोस्त का बदला, बैर का बदला बैर"

"फिर?"

"पंचों ने मुझे पन्द्रह-साल का कारावास दिया है।"

"तुमने गजब कर दिया अनंग!" अपनी खाट पर बैठते हुए अशोक ने कहा :—"मैं स्वयं ही बाहर आकर उससे निपट लेता, कमसे कम तुम और उरोजी तो जीवन का आनन्द देखते"

"उरोजी तो अनेकों मिल सकती हैं अशोक! लेकिन तुम्हारा जैसा मित्र कहाँ मिलेगा?" भावावेश में अनंग ने अशोक को चूम लिया।

"अच्छा, रहो मेरे पास ही फिर कुछ सोचेंगे।"

दोनों साथ-साथ रहने लगे। दोनों के गलों में कैदी नम्बर १ और ११ की तख्ती लटकादी गई। इस जेल में कैदियों को नम्बरों से ही बुला लिया जाता है नाम से नहीं।

इस प्रकार कई महीने बीत गये। बीच में उरोजी भी आई और मुलाकातें होती रहीं। लेकिन एक दिन बड़ा गड़ बड़

होगया। कैदी नम्बर ११ अनंग को अनरस की जेल में भेजने का परवाना आगया –कायदा एसा था कि लम्बी मीयाद के लोग पंडित–जेल में नहीं रखे जा सकते थे।

"एक रास्ता मैं बता सकता हूँ अनंग" अशोक ने कहा :— "चलो हम तुम अपनी–अपनी तख्ती बदल लें १ और ११ में कुछ अधिक भेद नहीं होता"

"फिर ?"

"तुम्हारी जगह मैं अनरस चला जाऊँगा।"

"और मैं ?"

"अपनी सजा के तीन साल पूरे कर चुका हूँ। एक वर्ष की बात और है, कुछ दिन माफ हो जायँगे। तुम चुपचाप अशोक बनकर बाहर निकल जाना और उरोजी को लेकर पंडित–गाँव से दूर किसी दूसरी जगह चले जाना।"

"और तुम अशोक ?"

"मैं पन्द्रह साल का जेल जीवन समाप्त करके तुम्हारे पास आ जाऊँगा"

"यह नहीं होगा अशोक ! कभी नहीं होगा"

"चिल्लाओ मत अनंग ! उरोजी के लिए तुम्हारा होना बहुत जरूरी है। लो मेरी तख्ती और अपनी मुझे दो।"

अँधेरी रात में एक ने दूसरे की तख्ती, वेष–भूषा और अपना नाम तक बदल लिया। दूसरे दिन दोनों मित्र कोसों की दूरी पर थे।

× × ×

अशोक अनरस की जेल में पहुँच गया अनंग की जगह। तभी एक दिन जब उरोजी अनंग से मुलाकात के लिए पहुँची तो उसने अशोक को पाया कैदी नम्बर ११ की तख्ती में। उसे बड़ा बिस्मय हुआ—लेकिन मित्रों की गुप्त अभिसन्धि जान कर वह कितनी प्रसन्न हुई यह नहीं कहा जा सकता।

"अच्छा तो इस भेद को यों ही रहने दो—तुम कुछ दिनों तक यहीं मेरे पास रहो ताकि लोग सन्देह न कर सकें।" अशोक ने कहा,

"ठीक है" और उरोजी अशोक के साथ रहने लगी। वह उसके लिए खाना बनाती और अशोक उसके लिए सामान जुटाता। रात को अशोक और उरोजी दोनों अलग-अलग चटाइयों पर हल्के-पतले कम्बल ओढ़ कर सोते। ज्वलित-दीपक रातभर दोनों का पहरा देता। कभी-कभी उरोजी के अनन्त-यौवन की शिखा को देखकर अशोक का मन बेईमान हो उठता था, लेकिन मित्रता के पवित्र-बन्धन उसे कसकर डाल देते थे। वह रात-रात भर जाग कर सौन्दर्य्य की अनिंद्य प्रतिमा को देखा करता और उरोजी इस प्रकार से निश्चिन्त होकर सोती मानो वे दोनों बहिन-भाई थे।

इसी बीच में एक दिन यह समाचार मिला कि कैदी नम्बर १ मर गया। कैसे मरा यह कुछ नहीं मालूम। उरोजी और अशोक दोनों को ही अनंग की मृत्यु पर बड़ा दुःख हुआ।

लोगों की नजरों में अशोक मरा था।

समय की गति के साथ-साथ धीरज अपने आप आ जाता है। अशोक और उरोजी अब शेष थे। होते-हंसते एक दिन यह तय पाया गया कि अनंग के बिछुड़ जाने के बाद अब दोनों-प्रेमी एक होजावें। दोनों ने मानसिक और वाचिक सी स्वीकृति दे दी। अशोक को अब अपनी नादानी पर बड़ी झुंझलाहट आरही थी—आखिर इतने लम्बे वर्षों को कैसे काटा जायगा? यदि अशोक-अशोक ही रहता तो?—तो वह जल्दी छूट सकता था।

आवश्यकता आविष्कार की जननी मानी जाती है। एक रात को उरोजी और अशोक चुप-चुप जेल से बाहर होगये। सौभाग्य से पहरेदार का घोड़ा अपना स्थान छोड़कर सामने वाले मैदान में चरने चला गया था। दोनों उस पर सवार होगये और जिधर मुँह उठा उधर चल पड़े।

पौ फटने वाली थी। दोनों प्राणी उतर कर एक झरने के पास जा बैठे। घोड़ा छोड़ दिया गया। पास में कुछ रूखी रोटियों टुकड़े थे। वे ही इस समय 'मोहन भोग' होगये।

"अब किधर चलना है अशोक?"

"गाँव नहीं लौटेंगे उरोजी! किसी जंगल में अपनी झोंपड़ी बना कर रहेंगे और वहीं बनायेंगे अनंग की प्रतिमा—बस।"

सहसा पास वाली झाड़ी में से एक खड़-खड़ाहट

की आवाज आई। अशोक ने चिहुँक कर पास से एक बड़ा-सा पत्थर हाथ में उठा लिया। उरोजी डरकर उसके पीछे होगई।

"दोस्ती का आखिरी अध्याय समाप्त कर रहे हो क्या अशोक ?" झाड़ी से निकलते हुए युवक ने कहा,

"अरे तुम ! तुम अनंग ! तुम तो······"

"अनंग—अनंग ?" उरोजी चमक कर अशोक की बगल से निकल कर अनंग के पास जा खड़ी हुई। उरोजी के नेत्रों में मानों शंका क दृश्य नाचने लगे।

"हाँ भाई, अनंग मरगया था—लेकिन ?"

"लेकिन हुआ क्या ?"

"सचमुच एक कैदी मर गया था—दो दिन बाद उसको रिहाई होने वाली थी। मैंने रात भर उसकी सेवा की फिर भी बेचारा नौजवान नहीं बच सका। मैंने उसे अपनी हीकोठरी में छोड़ दिया, उसकी तख्ती और कपड़े बदल लिये। उसकी कोठरी में जाकर आराम से सो गया।"

"और इस तरह तुम कई साल पहले ही छूट गये क्यों ?"

"लेकिन तुम यहाँ कैसे दिखाई देरहे हो अशोक !"

संक्षेप में अशोक ने सारी घटना सुनादी। अनंग के मरने का समाचार पाकर, उसने और उरोजी ने गृहस्थ की गाड़ी में अपने आपको लगा देने का निश्चय किया और किस तरह वह जेल से भाग खड़ा हुआ।

"चलो यह सब कुछ अच्छा हुआ—अब हम सब लोग इकट्ठे रहेंगे।"

"तुम अपनी वस्तु को सम्हालो अनंग!"

"और तुम!"

"मुझे अभी प्रायश्चित करना है न? मैंने मित्र की धरोहर पर नीयत बिगाड़ ली थी। कौन जाने तुम यकायक नहीं मिलते तो मैं कितना पतित होगया होता।"

"यह सब बातें अच्छी नहीं लगतीं—चलो हम सब चलेंगे।"

"बस, अनंग! नमस्कार! उरोजी अनंग की ही है और उसी की सदैव रहेगी—वायु के झोंकों के साथ उसकी सुन्दरता का पवित्र-पराग इस वनस्थली को मुखरित करता रहे और तुम सजल घन-घटा में छिपे हुए तरुण-अरुण की तरह उसे निहारते रहो—मेरी यही अभिलाषा है।"

—और देखते ही देखते अशोक उसी घोड़े पर बैठकर अनरस की ओर दौड़ गया। पहले दिन हो-हल्ला करने वाले पहरेदारों ने दूसरे दिन कैदी नम्बर ११ को जेल की कोठरी में ही सोता पाया।